रत्ना की बात

डा० रांगेय राघव

विनोद पुस्तक मन्दिर
हास्पिटल-रोड, आगरा।

प्रकाशक—
विनोद पुस्तक मन्दिर,
हॉस्पिटल रोड, आगरा।

प्रथम संस्करण
मई १९५४
मूल्य ३)

मुद्रक—
कैलाश प्रिंटिंग प्रेस,
बागमुजफ्फरखाँ, आगरा।

भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक में तुलसीदास का जीवन वर्णित है। उनका जीवन वृत्त ठीक से नहीं मिलता। जो है वह विद्वानों द्वारा पूर्णतया प्रामाणिक नहीं माना गया है। इतस्ततः जो उन्होंने अपने बारे में कहा है, जो बाह्यसाक्ष्य है, जो जनश्रुतियाँ हैं उन सबने मिल कर ही महाकवि का वर्णन पूरा कर सकना संभव किया है।

तुलसी और कबीर भारतीय इतिहास की दो महान विभूतियाँ हैं। दोनों ने भिन्न-भिन्न कार्य किये हैं। उन्होंने इतिहास की दो विभिन्न विचार धाराओं का प्रतिनिधित्व किया है। दोनों के विचारों का निर्माण विभिन्न वर्गों अर्थात् वर्णों के दृष्टिकोण से हुआ था। 'लोई का ताना' में मैं कबीर के विषय में लिख चुका हूँ।

रत्ना तुलसीदास की पत्नी थी और वह स्वयं कवियित्री थी।

तुलसीदास प्रकाण्ड विद्वान थे। उन्हें जीवन के अंतिम काल में अपने युग के सम्मानित व्यक्तियों द्वारा आदर प्राप्त हो गया था। कबीर को केवल जनता का आदर मिल सका था। दोनों पुस्तकें पढ़ने पर यह बिल्कुल ही स्पष्ट हो जायेगा।

तुलसीदास अपनी कविताएं लिखते थे। परन्तु उनके कुछ ऐसे पद, दोहे आदि हैं जो इतने मुखर हैं कि संभवतः लिखे बाद में गये होंगे, कहे पहले गये होंगे। वे बहुत चुभते हुए हैं और अधिकांश उनमें आत्म-परिचय आदि है। इसीलिये मैंने उनको उद्धृत कर दिया है।

बाकी उद्धरणों में दो प्रकार की रचनाएं हैं। एक वे उद्धरण हैं जो कवि के जीवन के साथ-साथ यत्रतत्र उनकी रचना का भी अल्पाभास देते हैं। दूसरे वे उद्धरण हैं जो यह प्रगट करते हैं कि वे केवल कवि नहीं थे, वे मूलतः भक्त थे। अतः लिखकर रख देना ही उनका काम नहीं था। वे उस विचार को

बाद में, लिखते समय, या पहले भी अनुभव करते थे। उनका जीवन भक्ति था, लेखन भक्ति था। अतः भक्ति के पक्ष को दिखलाने के लिये भी उनकी रचनाओं का ही सहारा लिया गया है।

तुलसी ने कई काव्य लिखे हैं। कई प्रकार से राम की कथा लिखी है। कभी कवितावली में, कभी मानस में, कभी बरवै में, कभी रामाज्ञाप्रश्न आदि में। उनका भी यत्रतत्र मैंने आभास दिया है कि वे रचनाएं एक ही राम के भक्त ने विभिन्न समयों पर विभिन्न कारणों और दृष्टिकोणों से लिखी हैं।

तुलसी एक समर्थ प्रचारक थे। उन्होंने एक धर्म गुरू का काम किया है। उसे मैंने स्पष्ट किया है। तुलसी के लक्ष्य, कार्य्य, प्रभाव आदि को मैंने विस्तार से देखा है। कबीर भी विचारक थे। उन्होंने अपने दृष्टिकोण को लेकर लिखवाया था। तुलसी ने अपने विचार को लेकर समाज को अपनी रचनाएं दी थीं। तत्कालीन धर्म में राजनीति किस प्रकार निहित थी, यह इन दोनों पुस्तकों को पढ़ कर निस्संदेह प्रगट होगा।

तुलसी के सामाजिक कार्य्य, उनकी भक्ति, उनके सुधार, उनके विद्रोह, उनके विचार, उनका दृष्टिकोण ऐसे विषय हैं जिन पर लोगों का भिन्न मत है। जो तुलसीदास कहते हैं हमें वह देखना चाहिये। तुलसी ने जो प्रगति की उसे समझने के लिए केवल उन्हें देख लेना काफी नहीं है, उनके पूर्ववर्ती युगों को भी देखना आवश्यक है।

कबीर गरीब नीच जाति के जुलाहे थे। वे वर्णाश्रम को नहीं मानते थे, न मुसलमानों को ही ठीक समझते थे। उन्होंने मनुष्य को अपने धर्म का उद्देश्य बनाया था।

तुलसी पुनरुत्थानवादी थे। कबीर के लिये पुरानी संस्कृति एक बोझ थी। तुलसी ब्राह्मण थे अतः उनके लिये वह गौरव थी। तुलसी ने उसी धर्म को फिर से मर्यादा दिलाई। एक फर्क यह हुआ कि तुलसी ने रूढ़ियों के उन पुराने बंधनों को तोड़ा जो वेद-ब्राह्मण की शक्ति को रोकते थे। उन्होंने रिआयतें देकर अधिकार प्राप्त किये।

कबीर के समय में मुसलमान पूरी तरह जमे नहीं थे। फिर कबीर वर्णाश्रम के नीचे भी पीड़ित थे। तुलसी के समय में मुगलों का वैभव और शोषण था।

तुलसी के पहले भक्ति आँदोलन निम्नवर्गीय विद्रोह का प्रतीक था जो कहता था कि भगवान के सामने सब बराबर हैं। तुलसी ने इसे तो माना, और वैसे ही माना जैसे पहले श्रीमद्भागवत में माना गया था, परन्तु वेद धर्म को समाज के लिये आवश्यक माना और पुनरुत्थान की ओर समाज को जगाया। तुलसी की भक्ति सामाजिक रूप में वेद धर्म और व्यक्तिपक्ष में भगवान से याचना थी। तुलसी ने भगवान को आदर्श सामंत राजा के रूप में ही स्वीकार किया।

तुलसी के बाद वे हिंदू मुसलमान संप्रदायों के समन्वयवादी दृष्टिकोण जो निर्गुणवादियों में थे, जैसे सिक्ख आदि, वे सब एक संस्कृति के नाम पर संगठित होने लगे और वे सब मुस्लिम विरोधी होगये। उस विरोध का आर्थिक कारण शोषण था—मुगलों के साम्राज्य का शोषण।

कबीर और तुलसी ने अपने अपने समय में मध्यकाल में इस प्रकार भारत को गहरी तरह से प्रभावित किया। दोनों के समय में परिस्थितियाँ बदल गई थीं और दोनों ने ही उसे अपने अपने वर्ण-दृष्टिकोण से सुलझाने का प्रयत्न किया था।

—रांगेय राघव

रत्ना की बात

भोर होगई। पहली किरण ने हल्का सा आलोक फैलाया तब पक्षी कल-कलनिनाद करते हुए आकाश में उड़ चले और काशी के घाटों पर भोर की जगार सुनाई देने लगी। धीरे-धीरे आलोक अंधकार के साथ जूझते-जूझते तांबे की चमक से भर गया और वह गङ्गा की गंभीर और विस्तृत धारा पर झल-मलाने लगा। किसी ने कलकण्ठ से गाया : हरे रामा, हरे रामा,........

और फिर दूर धीवरों की बंसियों के बजने का मीठा स्वर आया और कुछ देर बाद जब घाट के सहारे खड़े विशाल प्राचीरों वाले मंदिरों के घंटे घननन घननन करके बजने लगे, तब गेरुए वस्त्र धारण करने वाले साधुओं के झुण्ड के झुण्ड जल तीर पर चलते फिरते दिखाई देने लगे।

शीतल पवन मंद-मंद गति से चल कर रात की सारी थकान का हरण कर रहा था। और लहरों के अंगों को जब वह पवन हौले से छू देता तो फरफरी सी मच जाती। वे उधर अपने अङ्गों को सिकोड़ कर अपनी साड़ी खींच कर अपना शरीर ढाँक लेने का प्रयत्न करतीं, इधर यह पवन भी अपने दाह को खोकर बोझिल होने लगता।

और किसी के भक्ति पूर्ण स्वर से शब्द गूंजने लगा——

देवि सुरेश्वरि भगवति गङ्गे
त्रिभुवन तारिणि तरल तरङ्गे
शङ्कर मौलि विहारिणि विमले

मम मतिरास्तां तव पद कमले।

शब्द और भी उठा—

भागीरथि सुखदायिनि मातर—

तव जल महिमा निगमे ख्यातः

नाहं जाने तव महिमानं

पाहि कृपामयि मामज्ञानम्।

और भगवती पतिततारिणी जाह्नवी के प्रति निकले हुए वे शब्द धीरे-धीरे आने जाने वालों के कानों में गूंजने लगे, जिनको सुनकर अँधेरे ही पथों पर झाड़ू लगा चुकने वाले मेहतर अब वहां से भाग निकले, ताकि अपने दर्शन से वे उच्च जाति के पवित्र लोगों को प्रातःकाल ही अशुभ के सन्मुख न ले जा सकें। उस समय भी करोड़ों मन जल राशि गंगा में बही आ रही थी, जैसे शाश्वत होकर वह धारा बही जा रही हो।

असीघाट के ऊपर बने हुए एक छोटे से घर में उस समय एक तरुण ने उठ कर द्वार खोला और बाहर झांका। प्रकाश खुले दरवाजे से धीमे से भीतर घुसा। तरुण के नेत्र लाल हो रहे थे। लगता था वह रात भर का जागा है। वह बाहर आ गया और उसने कंधे पर पड़ी रामनामी चादर को उतार कर फटकारा और फिर बॉयें कंधे पर धर कर ऊपर को हाथ उठा कर अँगड़ाई ली। उसकी मूंछें पतली थीं, और होठों के दोनों ओर बिखर गई थीं। और ठोड़ी पर काली दाढ़ी के बाल कड़े से उग आये थे।

घर की दीवारों पर काई जम गई थी।

उस तरुण को देख कर घाट पर कोई धीरे-धीरे चढ़ने लगा। उसने धीरे से कहा: क्योंरे नारायण! गुसाईं जी की तबियत अब कैसी है?

पूछने वाले के स्वर में एक सुव्यवस्थित विनम्रता थी।

तरुण ने उदासीनता से देखा और कहा: रात भर सो नहीं सके।

'राम राम!' पूछने वाले ने कहा और फिर दुहराया: 'राम राम। बड़ी यातना है, बड़ी यातना है।'

'पता नहीं भगवान इतना दुख क्यों दे रहा है?'

'यही मैं भी सोचता हूं। इतने बड़े महात्मा को ही जब ऐसा कष्ट मिल रहा है, तो हम जैसों का तो जाने क्या होगा ?'

कहते-कहते वह सिहर उठा। जैसे सारा जीवन फिर आँखों के सामने नाच गया हो।

'कोई नहीं जानता।' उसने फिर कहा। 'फिर यही एक जीवन तो नहीं है नारायण !'

नारायण ने सिर हिलाया जैसे वह जानता था।

पूछने वाले ने जैसे अपने आपसे कहा : यही एक होता तो संसार इतना विचित्र क्यों होता ? महात्मा ठहरे वे।

नारायण के नेत्र फड़के।

'उन्होंने पाप नहीं किया।' उसने कहा।

'पाप ! राम राम !' दूसरे ने कहा : 'अरे उस जैसा पहुँचा हुआ महात्मा अगर पाप करेगा तो शेष और कच्छप दोनों ही इस धरती को नहीं संभाल सकेंगे नारायण। डूबने के लिये नीचे जाने की जरूरत नहीं होगी, उल्टे रसातल ही ऊपर उठ आयेगा और कलि से डूबी हुई धरती को सदा के लिये निगल जायेगा।

दोनों के नेत्रों में भयार्त्त छाया डोलने लगी।

नारायण कुछ कह नहीं सका क्योंकि पहले जनम के बारे में वह कुछ जानता नहीं था। कोई नहीं बता सकता था कि पूर्व जन्म में कौन क्या था ? यह जो अचानक समझ में न आने वाले कष्ट थे, यह जो आँखों देखते हुए म्लेच्छों की उन्नति हो रही थी, यह जो भले लोग कष्ट पा रहे थे, बुरे लोगों का वैभव बढ़ रहा था, यह सब जो समझ में नहीं आता था, यदि पूर्व जन्म ही इस सबका कारण न था तो और क्या हो सकता था ?

पूर्व जन्म !!

जन्मजन्मांतर का दारुण चक्र !

मृत्यु के समीप आकर यातना के बारे में मनुष्य का चिंतन !!

नारायण क्या कहता ?

उसका हृदय टूक-टूक हो रहा था। वह अपने आपको छोटा सा समझता।

उसके सामने धीरे-धीरे एक विशाल पहाड़ गल रहा था। वह उस कनक कंगूरे वाले महानगर को जल जल कर समाप्त होते हुए देख रहा था।

उसका गला भर आया।

आने जाने वाले रुक गये थे।

एक ने धीमे से पूछा : अरे क्या हाल हैं ?

'वही हाल है।'

'कोई लाभ नहीं ?'

'नहीं !'

तब किसी बूढ़े ने उदास स्वर में कहा : 'एक दिन तो ऐसा आता ही है भाइयो। गुसाईं जी की उमर पूरी हुई। वे पुण्यात्मा हैं।'

'पुण्यात्मा ? वे कलियुग को काटने वाले परम तपस्वी हैं !'

'अरे भइया ! वे वाल्मीकि मुनि के अवतार हैं।'

'रात भर', नारायण ने कहा—'बड़ा कष्ट रहा।'

'कष्ट नहीं है वह !' एक ने कहा, 'भइया हमारी तुम्हारी आँख में वह कष्ट है, क्योंकि हम तो यहाँ से आते जाते दिखाई नहीं देते। ऐसे महापुरुष जब जाते हैं तब भगवान का चक्र ठहर जाता है।'

'काशिराज ने संवाद मंगाया था।'

'तो क्या हुआ जी। इस घाट को तो अब कोई नहीं भूलेगा। यहाँ राजाओं का राजा पड़ा है। अहाहाहा ''क्या भाग्य है। जीते जी काशी को अमर धाम के साथ साथ अयोध्या जैसा परम पवित्र बना दिया। जगह जगह सुनाता हूँ, जगह-जगह लोग श्रद्धा से सिर झुकाते हैं।

'हटो हटो।' किसी ने कहा—'वैद्यजी आगये।'

लोग हट कर रास्ता देने लगे। भीड़ बढ़ गई थी। वैद्यराज सिर पर पगड़ी बाँधे थे और अङ्गरखा पहने थे जो था तो रेशम का, परन्तु पुराना हो चुका था। उनकी मूंछें सफेद थीं और होंठों पर पड़ी हुई थीं। उनके नेत्रों में एक चमक सी जलती थी और फिर सफेद सी भौंओं के भीतर छिप जाती थी।

'वैद्य जी !' एक व्यक्ति ने आशंकित स्वर से पूछा—'वैद्य जी !'

वैद्य जी रुक गये। उन्होंने उस आदमी की ओर करुणा भरे नेत्रों से देखा,

और फिर अत्यंत स्नेह और वेदना से मुस्करा दिये, जैसे जो वे कर सकते हैं कर ही रहे हैं, पर आगे परमात्मा भी तो कुछ है ? अगर इलाज से ही सब बच जाया करते, तो फिर कोई मरता ही क्यों ?

दूर कहीं किसी ने शंख निनाद किया और फिर घाट पर इधर उधर के हवा के झोंकों पर चढ़ कर झूमने वाला अगरु धूम अपनी पवित्र गंध फैलाने लगा।

वैद्यजी ने धीरे से कहा—

रामचंद्र मुख चंद्रमा
चित चकोर जब होइ
राम राज सब काज सुभ
समय सुहावन सोइ।

नारायण भीतर चला गया। भीतर से अब मलूकराम शिष्य बाहर आ गया था।

मलूकराम को देख कर लोगों में एक नई उत्सुकता जाग उठी। नारायण वैद्यजी के आने पर भीतर प्रबंध करने गया था।

एक व्यक्ति ने पूछा : क्यों मलूकराम ! महात्माजी का कैसा हाल है ?

मलूकराम ने अपने कंधों तक लहराते बालों को दुपट्टे के छोर से बाँधते हुए आकाश की ओर देख कर कहा : वही नाम रट है भइया। कैसी लगन है। कोई देखे तो। मुझे तो रात भर लगा कि कलि है ही नहीं। मैं तो किसी पवित्रतम आत्मा के पास बैठा हूँ। वहाँ कष्ट था तो सही, पर उसमें सत्ययुग की सी गरिमा थी। ऐसा लगता था—

उपल बरसि गरजत तरजि
डारत कुलिस कठोर
चितवकि चातक मेघ तजि
कबहुँ दूसरी ओर !
पवि पाहन दामिनि गरज
झरि झकोर खरि खीझि,

रोष न प्रीतम दोष-लखि,

तुलसी रागहिं रीझि !

सुनने वालों ने गद्‌गद होकर कहा : अहा हा ! धन्य हो हुलसी के पुत्र तुलसीदास ! अरी वह कैसी पवित्र कोख थी, जिसने तुझे धारण किया !

ब्राह्मण चंद्रनाथ ने आगे बढ़कर कहा : वह अवतार है भइया, अंश है। उसका काम इस कलियुग में भारतभूमि का उद्धार करना था, सो उसने अकेले ही कर दिखाया।

'आइये वैद्य जी !' नारायण ने द्वार पर निकल कर पुकारा।

सबने मुड़कर देखा वैद्य जी सीढ़ी चढ़ने लगे।

लोग आपस में बातें करने लगे।

एक ने कहा : भइया जब ऐसे महात्मा ही अन्तकाल में इतना दुख पाते हैं तो फिर हम गृहस्थों का क्या हाल होगा ?

दूसरे ने कहा : अरे क्या पूछते हो। गोसाईं जी ने कहा ही है—

काम क्रोध मद लोभ रत

गृहासक्त दुख रूप

ते किमि जानहिं रघुपतिहिं

मूढ़ पड़े भवकूप

एक और दूसरे ने कहा : उन्हीं की कहता हूँ भाइयो—

रामचन्द्र के भजन बिनु

जो चह पद निर्बान

ज्ञानवन्त अपि सोइ नर

पसु बिनु पूँछ बिखान।

जानि राम सेवा सरस

समुझि करब अनुमान

पुरुषा ते सेवक भये

हर ते भे हनुमान ।

सबसे पहले नारायण से आकर बात करने वाले ने अब कहा : घबराते क्यों हो ? अमर होकर तो कोई नहीं आता।

पुन्य पाप, जस अजस, के
भावी भाजन भूरि
संकट तुलसीदास को
राम करहिंगे दूर ।

सब को धैर्य सा लौट आया ।

वैद्य जी भीतर घुसे तो मन धुक धुक कर रहा था । शैय्या पर वृद्ध तुलसी-दास लेटे थे । उनके सिर के बाल गिर चुके थे, मुँह पर झुर्रियां पड़ गईं थीं । बांये हाथ पर पट्टी बँधी थी । वे अधमुंदी आंखों से देखते हुए कुछ सोच रहे थे ।

वैद्य जी निकट बैठ गये । उन्होंने प्रणाम किया । तुलसीदास ने मुड़कर देखा । उस अत्यन्त कष्टकर दुःख में भी उनके होंठों पर हल्की सी एक मुस्कराहट आ गई और नयनों में करुणा की छाया झलक आई ।

वैद्य जी ने नब्ज़ देखी । नाड़ी की गति देखकर वैद्य जी के मुख पर मलिनता दोहरी हो गई । नारायण ने देखा तो आतंकित हुआ । मलूक लौट आया था ।

वैद्य जी ने झुक कर कहा : महाराज !

तुलसीदास ने नयन उठाये । वे फिर मुस्कराये ।

वैद्य जी ने कहा : कुछ खाने की इच्छा होती है ?

'नहीं ।' तुलसीदास ने धीरे से कहा और फिर मुस्करा दिये । नारायण ने मुड़कर आँखें पोंछलीं । वह सह नहीं पा रहा था ।

तुलसीदास ने कहा : नारायण !

'महाराज !!' वह फफक उठा ।

'रोता क्यों है पागल ?' तुलसीदास ने कहा—'इसका इलाज वैद्य जी के हाथ में नहीं है । इसका तो कोई और ही प्रबन्ध कर सकता है ।'

वैद्य जी ने कहा : सच है महाराज ! वैद्य तो निमित्त है, ऊपर वाला ही सबका स्वामी है । वैद्य उसके सामने तो कुछ नहीं है ।

'राम जपो, राम जपो,' तुलसीदास ने कहा और वे विभोर से हो गये ।

वैद्य हताश हो गये । वे तुलसीदास को आँखें मींचे देख कर क्षण भर बैठे

रहे फिर नारायण और मलूक की ओर उन्होंने अत्यन्त निराशा से देखा और बाहर चले गये।

वैद्य जी को देख कर भीड़ समीप आ गई। इस समय वहाँ कई सौ लोग थे। कई बड़े बड़े रईस भी उपस्थित थे। वैद्य जी उस भीड़ को देखकर अचकचा गये। अनेक मठों के गद्दीदार महंत वहाँ आज भेद भाव भूल कर खड़े हुए थे। साधुओं की जमात गंगा की सिकता पर पड़ी हुई थी।

एक धनी व्यक्ति आगे बढ़ आया। उसने धीरे किंतु विचलित स्वर से कहा : वैद्य जी।

'क्या है महाराज?' वैद्य जी ने उत्तर दिया।

'महात्मा जी की तबियत अब कैसी है?'

वैद्य ने निराशा से सिर हिला दिया।

उस व्यक्ति ने पास खड़े चोबदार से कहा : देख नानगा! काशीराज के पास घुड़सवार भेजकर इत्तला करा दे कि महात्मा जी की हालत पहले से भी अधिक बिगड़ गई है।

यह कह कर उसने फिर वैद्य जी की ओर देखा। वे इस समय कोई नया नुस्खा सोच रहे थे।

कुछ ही देर में बात सब में फैल गई। बातें चल पड़ीं।

एक ने कहा : वेदों का महात्मा जी ने ही उद्धार किया।

दूसरे ने दाद दी : निगमागम की तो बात ही कोई नहीं पूछता था। म्लेच्छों के राज्य ने सबको ऐसा डरा दिया था। महात्मा जी ने रामराज्य की याद दिलाकर लोगों का भय दूर कर दिया।

'कौन जानता था? सब अपने पुराने धरम को भूल चले थे। किसी में मरजाद नहीं रही थी। गुँसाईं जी ने सबको झकझोर कर जगा दिया।'

श्रीमद वक्र न कीन्ह केहि
प्रभुता बधिर न काहि,
मृगनयनी के नयनसर
को अस लाग न जाहि,

लेकिन मद के झूठे कवच तोड़ कर गुंसाई जी ने लोगों को जगाया।'

ठीक कहते हो—बाबा ने ही कहा था—

राज करत बिनु काज ही
करैं कुचालि कुसाज
तुलसी ते दसकंध ज्यों
जइहैं सहित समाज।'

'क्या कहते हो! धीरे कहो। कहीं कोई सुन न ले?'

'यहाँ कौन सुनता है! मैं क्या डरता हूँ—

आगे भल, आड़ेहु भलो,
भलो न घाले घाउ
तुलसी सबके सीस पर
रखवारो रघुराउ।'

'वह तो ठीक है पर अपने पांव में कुल्हाड़ा मारना भी ठीक नहीं—

पाही खेती, लगन बट,
ऋन कुब्याज, मग खेत,
बैर बड़े सों आपने
किये पाँच दुख हेत।'

परन्तु यह बातें फिर आपस में बँट गई और एक उदासी सब पर आ घिरी।

वैद्य जी धीरे धीरे सीढ़ी से उतर चले। वे बड़े बड़े आदमी भी अपने गम्भीर मुखों को लिये अपनी पालकियों में आकर बैठ गये। भीड़ श्रद्धा से खड़ी रही। वहाँ लोग समझ नहीं पा रहे थे, कि वे क्या करें? तुलसीदास जा रहा था। वह जिसने उन्हें साहस दिया था, जिसके शब्दों में रामचन्द्र के कोदण्ड की प्रत्यञ्चा की टंकार गूंजा करती थी। जिसके मुख से अयोध्याकाण्ड सुनकर सहस्रों नर नारी ज़ार ज़ार आंसू बहाने लगते थे, आज उनका वही प्रिय तुलसीदास जा रहा था।

वे कैसे उस वेदना को सहज ही सह सकते थे।

नारायण द्वार पर खड़ा हुआ था। उसके नेत्रों में असीम दुःख था।

मलूक ने सुना। तुलसीदास धीरे-धीरे बुदबुदा रहे थे—

बालपने सूधे मन राम सनमुख भयो

रामनाम लेत, माँगि खात टूक टाक हौं,

परयो लोकरीति में, पुनीत प्रीति रामराय

मोहबस बैठो तोरि तरक तराक हौं।

खोटे-खोटे आचरन आचरत अपनायो

अंजनीकुमार, सोध्यो राम पानि पाक हौं,

तुलसी गुसाईं भयो, भोंड़े दिन भूलि गयो

ताको फल पावत निदान परिपाक हौं।

वह मंद मंद स्वर जब नारायण के कानों में पहुँचा तब उसकी आत्मा में प्रार्थना की तन्मयता भग गई।

तुलसीदास फिर गाने लगे—

असन बसन हीन, बिषम बिषाद लीन

देखि दीन दूबरो करै न हाय हाय को?

तुलसी अनाथ सों सनाथ रघुनाथ कियो

दियो फल सीलसिंधु आपने सुभाय को।

नीच यहि बीच पति पाइ भरुआइगो

बिहाय प्रभु भजन बचन मन काय को।

तातें तनु पेषियत घोर बरतोर मिस

फूटि फूटि निकसत लोन राम राय को।

'गुरुदेव !!' नारायण ने पाँवों पर हाथ रख कर आकुल कण्ठ से पुकारा··
'गुरुदेव !!'

'कौन? नारायण?' उन्होंने आँखें खोल कर कहा।

'गुरुदेव! यह आप क्यों दुहरा रहे हैं?'

'बेटा! जितनी बार नाम मुँह से निकले उतना ही अच्छा है। अब उसके सिवाय सुनने वाला है भी कौन?'

'पर इतनी प्रार्थना करने से भी तो कुछ नहीं हुआ!'

'राम राम! बेटा! ऐसा न कह। पाप की बात न कर। दीनबंधु के स्वीं

में पहुंचना सहज नहीं है नारायण !' तुलसीदास ने अबके दृढ़ स्वर से गाया—

जीबौं जग जानकी जीवन को कहाइ जन

मरिबे को बारानसी, बारि सुरसरि को

तुलसी के दुहुँ हाथ मोदक हैं ऐसे ठाउँ

जाके जिए मुए सोच करिहैं न लरिको ।

मोको झूठो साँचो लोग राम को कहत सब,

मेरे मन मान है न हर को, न हरि को ।

भारी पीर दुसह सरीर तें बिहाल होत,

सोऊ रघुबीर बिनु सकै दूरि करि को ।

उस स्वर में मानस की गहराइयों का जो अटूट विश्वास था उससे नारायण का हृदय दृढ़ हुआ । परन्तु वह भावना के उद्वेग में कभी-कभी डगमगाते जहाज की भाँति अपने मन को रोकने की चेष्टा करने में लग गया ।

मलूकराम ने कहा : नारायण ! पानी ले आ जाकर ।

नारायण ने कहा : जाता हूँ ।

वह कलश लेकर चला गया ।

'जा पूजा कर आ वत्स !' तुलसीदास ने कहा ।

मलूक अब राम की पूजा करने बगल की कोठरी में चला गया । तुलसीदास खुले पटों में से देखते रहे ।

और वे गुनगुना उठे—

सीता पति साहेब, सहाय हनुमान नित

हित उपदेस को महेस मानो गुरु कै

मानस बचन काय सरन तिहारे पायँ

तुम्हरे भरोसे सुर मैं न जाने सुर कै,

ब्याधि भूत जनित उपाधि काहू खल की,

समाधि कीजै तुलसी को जानि जन फुर कै,

कपिनाथ, रघुनाथ, भोलानाथ, भूतनाथ,

रोगसिंधु क्यों न डारियत गायखुर कै ?

कुछ देर के लिए निस्तब्धता छा गई । मलूका एक कोने में बैठा देखता

हुआ मनही मन सोच रहा था। तुलसीदास ने ही फिर तान छेड़ी—

कहौं हनुमान सों सुजान रामराय सों
कृपानिधान संकर सों, सावधान सुनिए।
हरष विषाद राग रोष-गुन दोष-मई,
बिरची बिरंचि सब देखियतु दुनिए।
माया जीव काल के, करम के, सुभाय के,
करैया राम, बेद कहैं, साँची मन गुनिए,
तुमतें कहा न होय, हाहा! सो बुझैये मोहिं,
हौंहुँ रहौं मौनही, बयोसो जानि लुनिए।

और फिर उसने देखा वे शांत से दिखाई देने लगे। मानों वे जो बो चुके थे, उसीके फल काट रहे थे, इसे वे पहँचान गये थे।

सचमुच अंतिम वेला पास आ रही थी।

तुलसीदास ने कराहा : नारायण!

गुरुदेव!

फिर उत्तर नहीं आया। लगता था वे सो गये थे।

आज यात्री को बहुत कुछ याद आ रहा था।

मृत्यु की विकराल छाया आज तक जीवन के पाँव पकड़कर चलती रही थी, परन्तु अब ऊपर चढ़ने लगी थी और जैसे बाढ़ का पानी बढ़ता जा रहा था, वह आज उस वृद्ध को अपने भीतर सदा के लिये डुबा लेना चाहती थी।

सुदूर का अन्धकार निकट आने लगा और जैसे मन बहुत दूर किसी अंतर्लांत अंधेरी गहराई में फिर भटकने लगा, जिसमें कहीं भी प्रकाश दिखाई नहीं देता था।

नारायण आया और चला गया।
तुलसीदास को याद आने लगा!

बाजे बजने लगे। स्त्रियाँ गा रही थीं—

आज हि बाँस के माँड़व मनिगन पूरन हो
मोतिन्ह झालरि लागि चहूँ दिसि झूलन हो,
गंगाजल कर कलस तौ तुरित मँगाइय हो
जुबतिन्ह मङ्गल गाइ राम अन्हवाइय हो।

कौन गा रहा है यह!!

कुछ नहीं। यह गीत तो राम के प्रति है, उससे भी और पुरानी है यह स्मृति। कहाँ जाकर रुकेगी?

केवल जन-श्रुति पर।

सचमुच स्त्रियाँ गा रही थीं।

क्वाँ क्वाँ कर बालक का स्वर सुनाई दिया।

पण्डित आत्माराम दुबे का हृदय उछल पड़ा।

दाई ने कोठे से निकल कर कहा: पण्डित कड़े लूँगी। लड़का हुआ है।

घर के बाहर संबंधियों ने आकर भीड़ सी कर रखी थी। आत्माराम बाहर आये तो लोगों ने कहा: बधाई है पंडित जी। वंस चलाने वाला आ गया।

विश्वम्भर नाथ ने कहा: सातों सातों पीढ़ियाँ तर गईं।

और उनके पतले मुख पर उनके होंठ कोनों तक फैल गये।

टहलनी पान रख गई।

उस आनन्द में कोठे में थाली बजने की आवाज़ आई। जन्म होते ही बच्चे का भय छुड़ाया जा रहा था, ताकि वह शब्द का आदी हो जाये, बड़ा हो जाने पर ज़रा ज़रा से कोलाहल पर चौंक न उठा करे।

आत्माराम दुबे बैठ गये। वक्ष फूला हुआ था, मस्तक झुका था। अधेड़ होने पर उनके घर पुत्र आया था। उन्होंने आशा छोड़ दी थी। उस समय अचानक भगवान ने उनकी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया था।

द्वार पर से नाइन ने इशारा किया।

आत्माराम ने जाकर कहा : क्या है ?

नाइन ने घूंघट में से कहा : हालत अच्छा नहीं है। वैद्य जी को बुलवा लें।

आत्माराम ने सुना तो धरती पाँवों के नीचे से खिसक गई। गले में पड़े दुपट्टे को कस कर पकड़ लिया और काँपते कंठ से पूछा : क्यों ! क्या बात है ?

'होश में नहीं है।' नाइन ने उत्तर दिया।

'कौन ! बच्चा !'

'नहीं पण्डित जी माँ !' नाइन ने कहा—'बच्चा तो ठीक है। पर पलेगा कैसे ?'

पण्डित बाहर आये तो उनके चेहरे पर उदासी को लोगों ने ऐसे जमा हुआ पाया जैसे तम्बू में ऊंट आ गया था। खुशी बिचारी मालिक की तरह ठंड में सिकुड़ी हुई एक कोने में बैठी काँप रही थी।

'क्या हुआ ?' विश्वम्भरनाथ ने पूछा।

गंगा दयालु ने कहा : खैर तो है ?'

'बच्चे की माँ बेहोश है।' पण्डित ने लरजती आवाज़ से उत्तर दिया।

'अरे तो घबराते क्यों हो !' विश्वम्भरनाथ ने अपने चिकने चिपुड़े स्वर में कहा—'ठीक हो जायेगी। वा महाराज ! स्त्री के लिये भी कोई ऐसे रोता होगा ?'

पण्डित सकपका गये। वे मन ही मन चोट खा गये परन्तु वे दूसरों को

बहुत चाहते थे। बहुत प्रेम करते थे। सांत्वना नहीं हुई।

गंगादयालु ने कहा : डरो मत आत्माराम ! भगवान सबका भला करता है। उसकी मर्जी के बिना कुछ नहीं होता।

आग ठण्डी होने लगी।

और तभी विश्वम्भरनाथ ने कहा : बच्चा भी तो अपना भाग लेकर आता है पण्डित। उसे अगर परमात्मा जिलायेगा तो उसे भी जिलायेगा जो उसे पालेगी।

'क्यों नहीं ?' गंगा दयालु ने कहा—'संतान का मोह ही ऐसा होता है। वह रोकर दूध मांगेगा, तो माँ तो यम से छूट कर आ जायेगी !

और पण्डित आत्माराम दुबे के सामने अब एक ही बात बड़ी होने लगी : बच्चा भी तो अपना भाग्य लेकर आया होगा, बच्चा भी तो अपना भाग्य लेकर आया होगा !

वे बाहर चले गये।

निस्तब्धता छा गई थी।

वैद्य जी निराश से जा रहे थे। पण्डित आत्माराम ने दोनों हाथों से सिर के बाल नोंच लिये।

तुलसी का शव बाँधा जा रहा था। दाइन एक छोटे सद्यजात बालक को लेकर खड़ी थी।

विश्वम्भर नाथ ने कहा : पण्डित धीर धरो। स्त्री फिर आ जायेगी। कोई ऐसे स्त्री के लिये सबके सामने व्याकुल होकर औरों को हँसने का मौका नहीं देता।

गंगादयालु ने सिर हिलाया। मानो वे भी यही कहना चाहते थे।

हठात् द्वार पर वयोवृद्ध ज्योतिषी रामेत दिखाई दिये। वे आगे बढ़ आये। उन्होंने शव देखा तो अपने गंभीर परन्तु कांपते कण्ठ से कहा : कौन ? तू चली गई ?

उन्होंने इतना कह कर रहस्य भरी दृष्टि से आकाश की ओर देखा। उस दृष्टि में एक अज्ञातमय की भावना थी जिसे देख कर सब आतंकित हो उठे। नाइन का हाथ कांप गया। बच्चा सस्वर रो उठा।

रामेत के सिर के सफेद बाल हिल उठे। उन्होंने गंभीरता से नाइन की ओर देखा और वे हँसे।

उस विकराल हास्य को सुनकर सब थर्रा गये।

गंगादयालु भयार्त्त सा फुसफुसाया : क्यों हँसे? महाराज क्यों हँसे?

पण्डित रामेत ने उंगलियों पर कुछ हिसाब लगाया और सिर हिलाकर संस्कृत में कुछ बुड़बुड़ाये, जो स्पष्ट सुनाई नहीं दिया, परन्तु यह पता चल गया कि वे कुछ ज्योतिष का हिसाब लगा रहे थे।

आत्माराम सिर झुकाये बैठे थे। विश्वम्भर नाथ ने धीरे से कहा : होश में आओ आत्माराम। महाराज से पूछो वे क्या कहना चाहते हैं?

परन्तु आत्माराम वैसे ही बैठे रहे, जैसे वे निश्चेष्ट हो गये थे। वे सुनते हुए भी जैसे समझ नहीं पा रहे थे। आँखें फटी हुई थीं। मुख पर एक आर्द्र वेदना झलक रही थी।

गंगादयालु ने रोष से आत्माराम की ओर देखा, फिर जैसे विश्वम्भरनाथ से आँखों में ही राय ली। विश्वम्भरनाथ ने इंगित किया।

गंगादयालु ने वृद्ध ज्योतिषी के पांव पकड़ कर कहा : महाराज! आत्माराम दुबे इस समय मोह ग्रस्त हो रहे हैं। वे स्त्री वियोग में अपने कर्त्तव्य को भी भूल गये हैं।

'यह भूलना', वृद्ध ने कहा—'स्वाभाविक ही है गंगादयालु! भाग्य बड़ा बलवान है। उसके सामने मान्धाता, और रन्तिदेव की भी नहीं चल सकी, फिर आत्माराम तो हैं ही क्या?'

वृद्ध का कठोर स्वर आत्माराम के व्यक्तित्व को छोटा करता हुआ उसके मन के भीतर उतर गया।

'पण्डित जी!' आत्माराम गिड़गिड़ा उठे : 'मैं क्या करूँ? भगवान ने ही दिया था तो इधर देकर उधर क्यों छीन लिया?'

'छीन लिया?' रामेत ने कहा—'अभागे लाचार! तू क्या दैव से भी

बलवान बनना चाहता है ? जानता है जब बालक का जन्म होता है तो वह मुट्ठी बाँधकर क्यों आता है ? नहीं जानता न ? तो सुन ! वह अपने हाथ में रेखाएँ छिपाकर आता है । उन रेखाओं को विधाता अपने हाथ से खींचता है । त्रिभुवन में कोई शक्ति नहीं जो उन रेखाओं को बदल दे । प्राणी आता है और वे रेखाएं उसे नचाती हैं । एक दिन वह मुट्ठी खोल कर चला जाता है ।

उस समय संबंध की स्त्रियाँ रो पड़ीं । उनका वह मनहूस स्वर सुनकर रामेत को जैसे चेतना सी आगई । उन्होंने हाथ उठा कर जैसे सुदूर बसे हुए नेपथ्य की ओर इंगित कर के कहा : सुनता है मृत्यु रो रही है ! वही इस मूलों में जन्म लेने वाले बालक का दुर्भाग्य है । यह बालक नहीं जन्मा है, यह तेरे सारे कुल को नष्ट कर देने वाला कुठार पैदा हुआ है !

'महाराज !' आत्माराम ने रोते हुए दया की भीख माँगी । कहा : 'अबोध बालक पर इतना बड़ा लाँछन किसलिये ?'

'अबोध !' रामेत ने क्रुद्ध से स्वर में कहा : 'त्रिभुवन को मूर्च्छित करने की सामर्थ्य रखने वाला हलाहल कालकूट भी कितना था याद है न ? एक हथेली के गड्ढे में समा गया था । लेकिन उसे पीने वाले देवाधिदेव शंकर का भी गला भीतर ही भीतर जल गया था । है तुझमें शंकर जैसी सामर्थ्य ?'

'महाराज !' आत्माराम ने दोनों घुटनों में मुँह छिपा लिया । कितना भयानक था वह सब !

'तो क्या ?' गंगादयालु ने कहा : 'यह बिच्छू पैदा हुआ ? जिस कोख से जन्मा, उसे ही इसने फाड़ दिया ?'

रामेत ने सिर हिला कर कहा : अपना ही नहीं, यह बालक समस्त कुटुम्ब का सर्वनाश कर देगा ।

गंगादयालु और विश्वम्भरनाथ की आँखों के आगे अंधेरा नाचने लगा ।

'आत्माराम !' गंगादयालु चिल्लाया ।

उन्होंने नहीं सुना ।

'सुनते हो ?' विश्वम्भरनाथ ने अब विकराल दृष्टि से देखते हुए कहा। 'महाराज क्या कह रहे हैं ?,

'नहीं, नहीं।' आत्माराम ने दोनों हाथ हिला कर कहा : 'महाराज से भूल हो गई है। वे नहीं जानते। जन्म देने वाला तो भगवान है। कौन इस संसार में आकर नहीं मरता। कहाँ हैं वे जो अमर रहना चाहते थे। सब ही एक न एक दिन इस संसार से चले जाते हैं। यदि कोई किसी दूसरे के भाग्य से मरता है, तो उसका अपना भाग्य कहाँ जाता है ? इसका अर्थ यही है कि सभी अपने ही भाग्य से जीते और मरते हैं। यह झूठ है।'

'झूठ है !!' पंडित रामेत गरज उठे। 'घर में स्त्री का शव रखा है और दुराचारी तू शास्त्रों को झूंठ कहता है ? तेरे पाप के कारण ही तेरे घर में राक्षस का जन्म हुआ है। और वही एक दिन सबका सर्वनाश करके रहेगा।' उन्होंने उपस्थित कुटुम्बियों की ओर देख कर कठोर स्वर में ही कहा : 'जो चारवाक को ही सब कुछ मानता है, उससे मैं विवाद करना नहीं चाहता।'

चारवाक !!

क्या कह रहे हैं पंडित रामेत !!

आत्माराम दुबे पर यह लांछन !!

पंडित आत्माराम दुबे का सदाचार और पवित्र जीवन सोरों में नहीं, आसपास तक प्रसिद्ध है !

'नहीं।' गंगादयालु ने हठ स्वर में काट कर कहा—'महाराज शांत हों। पंडित आत्माराम दुबे वेदपाठी ब्राह्मण हैं। उन्होंने आज तक कुलीन और शुद्ध ब्राह्मण की भांति जीवन व्यतीत किया है। आप उन्हें इस प्रकार नहीं कह सकते। माना कि स्त्री वियोग में आरत हो रहे हैं और क्षण भर के लिए अपने आपको भूल गये हैं, परन्तु क्या वे अपने कर्त्तव्य और धर्म को भूल जायेंगे ? वे धर्मनिष्ठ हैं। उनमें कलियुग का कोई भी चिन्ह नहीं है। उन्होंने कभी भी वेद के बताये मार्ग पर चलने में तर्क नहीं किया और आज भी वे शास्त्र के विरुद्ध तर्क नहीं करेंगे।'

आत्माराम दुबे ने विह्वल स्वर से गंगादयालु की ओर देख कर कहा : तुम भी गंगा ! तुम भी !!

वे कह नहीं सके। उनका गला रुँध गया। हठात् दृष्टि शव पर जाकर रुक गई। वे देखते ही रह गये।

विश्वम्भरनाथ ने कहा : क्या देखते हो ? यही है तुम्हारी हुलसी। मेरी भाभी यही लगती थी न ? कितने अच्छे स्वभाव की देवी थी। कितनी पति-व्रता थी। कितनी धर्मनिष्ठा और पवित्र थी। तुम्हें तो वह प्राण के समान थी न ? कहाँ वह आज पण्डित आत्माराम ? कहाँ है वह ?

'भइया वह सो गई है।' आत्माराम ने आँखों पर हाथ रख कर दारुण-वेदना से सिर हिलाते हुए कहा—'वह सो गई है !'

पंडित की बात सुन स्त्रियाँ फिर रो पड़ीं। दिखावे भर को रोने वाली कुटुम्ब की संबंधिनी स्त्रियाँ भी विचलित हो गईं। उनका तो सगोत्र नाता भी न था। अपने अपने पुरुष के माध्यम से वह सम्बन्ध इस परिवार में आकर जुड़ गया था। परन्तु हुलसी का पति उसे इतना चाहता था यह तो उनके लिए ईर्ष्या का विषय था ! क्या उनके पति भी उन्हें इतना ही चाहते हैं ? हुलसी का जीवन सफल हुआ। और फिर सुहागिन ही मर गई। इससे अधिक सुख इस संसार में स्त्री के लिये है ही क्या ? यही एक वेदना रह गई कि बच्चे को पाल नहीं सकी, परन्तु बच्चा तो राक्षस हुआ है। कुल का नाश कर देगा !

कुल का ?

आतंक घहराने लगा।

अपने अपने बच्चों की सूरतें याद आने लगीं।

कम्बख्त यहीं आकार पैदा हो गया। जनम लेते ही माँ को खा गया !

विश्वम्भर नाथ ने कहा : सो नहीं गई है, मर गई है। मिट्टी हो गई है। अब इसे मरघट ले चलने की बेला आ गई है पण्डित। उठो ! स्नेह की वेदी पर वह अपना बलिदान दे गई है। इस पापी संतान को जन्म देते ही वह मर गई है। उसका तो इस कुल नाशक से इतना ही संबंध था।

'ऐसा न कहो !' आत्माराम ने कहा 'ऐसा न कहो ! वह भी भगवान का ही भेजा हुआ है !'

गंगादयालु तीखे स्वर से चिल्ला उठा : तुम अंधे हो गये हो

पण्डित ! तुम कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य भूल गये हो। तुम नास्तिकों की तरह शास्त्र से तर्क करके अपने पितरों को घोर कष्ट और पाप दे रहे हो। तुम्हें लज्जा नहीं आती ? तुम एक बालक के पीछे सारा कुल नष्ट कर देना चाहते हो ? तुम अपने घर में उजाला करने के नाम पर अपनी ही चादर में आग लगा रहे हो और नहीं समझते कि तुम्हारी इस मूर्खता के कारण तुम ही नहीं, तुम्हारा घर ही नहीं, बल्कि सारा पड़ोस तक भस्मीभूत हो जायेगा ! इस पुत्र का तुम्हें त्याग करना ही होगा।

'त्याग !!' आत्माराम ने दोनों हाथों से सिर को पीट लिया। और चिल्लाये : 'किसका त्याग ! पुत्र का ?'

'पुत्र का नहीं रे पागल,' वृद्ध रामेत ने कहा—'इस मांसपिण्ड का जो आते ही माता का भक्षक बन गया। जो कल से एक एक करके इस आँगन और आँगन के बाहर बैठे सब स्त्री पुरुष, आबाल वृद्धों को खा जायेगा और अन्त में तुम्हें भी खा जायेगा आत्माराम ! तुम जो इससे इतना स्नेह दिखा रहे हो, तुम भी नहीं बचोगे !'

'शांत हों महाराज !' विश्म्भरनाथ ने कहा : 'स्वयं श्रीकृष्ण भगवान ने कहा है कि कुल के लिये व्यक्ति, ग्राम के लिये कुल, जनपद के लिये ग्राम और राजा के लिये जनपद का त्याग करना उचित है। यह तो धर्म का प्रश्न आ उपस्थित हुआ है। क्या पण्डित आत्माराम बिरादरी के ऊपर अपने को गिनते हैं ? मैं सारे ब्राह्मणों की ओर से पूछता हूँ। क्या वे अपने को सब से अलग गिनते हैं ?'

आत्माराम विचलित से दिखाई दिये। कुल की एक वृद्धा ने कहा : बेटा आत्मा ! कैसे चुप हो रहा है। ऐसा तो नहीं हो सकता न ? त्याग दे। वह पुत्र नहीं है। वह कुल के लिये अभिशाप है। मैं फिर तेरा ब्याह कराऊंगी। भगवान चाहेगा तो फिर राजा दशरथ की भाँति तेरे आँगन में एक छोड़ चार चार घुटुरवन खेलेंगे। इस कुलनाशक को त्याग दे बेटा, इसे त्याग दे।

पंडित आत्माराम ने गिड़गिड़ा कर कहा : त्यागता हूँ चाची, त्यागता हूँ·······

परन्तु वे रह नहीं सके। कहने के साथ ही आवेश में आकर मूर्च्छित होकर वहीं गिर पड़े।

गंगादयालु ने कहा : कहाँ है वह बालक?!

परन्तु बालक वहाँ नहीं था। नाइन भयभीत होकर उसे लेकर पहले ही चली गई थी।

'पता नहीं।' विश्वम्भरनाथ ने उत्तर दिया।

वे सब भयभीत हो गये।

नाइन बच्चे को घर सुला आई थी। उस पर किसी को संदेह नहीं हुआ।

वही बालक आज वृद्ध सा मृत्यु शैया पर पड़ा था।

'आह!' वृद्ध तुलसीदास ने कहा।

'क्या हुआ गुरुदेव!' मलूक ने पूछा।

'बहुत दर्द होता है बेटा!'

'बाय का दर्द है गुरुदेव। मैं दवाई तो नहीं जानता, पर एक अघोर भभूत देता है।'

'अघोर? वह क्या जाने वत्स! वह तो मेरे राम को नहीं जानता। वह तो पापी है। श्रुति का मार्ग छोड़ कर मनुष्य जीवन को नष्ट कर रहा है!'

मलूक प्रभावित हो गया। बोला : गुरुदेव पाँव दबादूँ?

'नहीं वत्स!'

'क्या हुआ मलूक!' नारायण ने झांक कर पूछा।

'दर्द बढ़ गया है।'

नारायण ने सिर हटा दिया। और तुलसीदास को फिर झपकी सी आने लगी। फिर नयनों में चित्र से आने लगे।

वे सोचने लगे।

वह जीवन एक अबोध सत्ता थी। इतना तो याद नहीं कि तब भाव क्या था, क्या नहीं था। केवल भूख लगने पर रोना, प्यास लगने पर रोना, यही आत्मअभिव्यक्ति का एकमात्र ढंग था। वह रुदन, वह असहाय पुकार नाइन के हृदय को छू लेती थी। उसे भी तो डर हो सकता था कि जिसे पाल रही है वह अनिष्ट कारी होने के कारण कहीं उसे ही न मार डाले ? परन्तु उस अशिक्षित स्त्री के सामने जैसे अपने तेरे के भेद का बंधन नहीं था।

वह तो शाश्वत नारी थी। मानव की संतान अपने छोटे छोटे हाथ पाँव उठा उठा कर पटकती रहे तो उसका हृदय कैसे चुप रह सकता था। वहाँ जाति कुल, मर्यादा, धन, व्यवहार और स्वार्थ, कुछ भी नहीं थे। वहाँ तो केवल एक करुणा थी, एक ममत्व था। वह अपनापन उस समय जो मिल गया था, वही आज तुलसीदास बन कर पड़ा है।

तब क्या रहा होगा ?

फिर उस स्त्री ने संबल दिया ?

मालूम नहीं। पर धुंध सी जागती है।

दूध मिलता रहा, जीवन किसी तरह चलता ही रहा।

फिर वह एक बहुत हलकी सी याद है। वह कभी मारती थी तब बच्चा रोता था। फिर न जाने क्यों वह उस अनाथ बालक को अपने वक्ष से लगा कर उसके कोमल गालों को चूमने लगती थी। बालक की हिचकियाँ बंद हो जाती थीं। वह सुख से मुस्कराता।

फिर ??

फिर वह घुटनों पर चला था। वह स्त्री ताली बजा कर खिलाती थी। और भी तो आँगन में कोई होता था, जो बालक को खाट की पाटी पकड़ कर चलना सिखाता था। वह कौन था !!

वह नाई रहा होगा ।

और नाइन ? अब तक ऐसा लगता है जैसे अत्यन्त प्रेम से सिंचित दो नेत्र देख रहे हों, सुदूर आकाश में हैं वे, पर अभय सा देते हुए निरंतर देखते रहे हैं ।

वह मां की आँखें नहीं है । पर नाइन की आँखें हैं । करुणा, निष्कलंक, और लगता है उस दृष्टि से महान कुछ है ही नहीं, वही तो जीवन की आदि शक्ति है । पालने वाली प्रभा ही वास्तव में चिरंजीव भय है, सनातन कल्याण है……

बालक चार वर्ष का था ।

एक घर सा था ।

उसमें अनेक लोग आ गये थे । वहाँ कुछ औरतें रो रही थीं । बालक भागा भागा—'अम्मा', 'अम्मा', कहता आया था । किसी बूढ़ी स्त्री ने रोक लिया था ।

'कहाँ जाता है बेटा ?'

'अम्मा पाच ।'

तोतली बोली सुनकर ही संभवत : कुछ लोग हँस दिये थे ।

किसी ने कहा इसे बाहर ले जाओ । ले जाओ इसे ।

फिर किसी ने उठाकर गोदी में ले लिया था और बाहर लेकर चला गया था ।

शाम हो गई थी ।

आज कोई नहीं था ।

घर में अंधेरा था।

सब भूल गये थे कि बालक कहां था।

बालक कोठे में से निकला था और दालान में आ गया था। उसे कुछ दिखाई नहीं दे रहा था। अंधेरा छा रहा था।

'अम्मा ! अम्मा !!' बालक ने भयभीत स्वर से पुकारा था।

कुछ नहीं हुआ था। किसी ने जवाब नहीं दिया था। वह अपने छोटे छोटे पाँव रखता इधर उधर घूमने लगा था। उसे डर लगा था। वह रोने लगा था।

भूख लग रही थी।

पर वहाँ तो कोई नहीं था।

वह द्वार के पास गया। खोलने का यत्न किया, पर वह बन्द था। खुला नहीं।

कुछ देर तक वह वहीं खड़ा खड़ा रोता रहा।

फिर थक कर बैठ गया था।

अंधेरा डराता था। बालक ने आँखें मींच ली थीं। मुट्ठी बाँध कर वह दरवाजे से चिपक कर बैठ गया था। और फिर रोते रोते ही वह सो गया था।

जब आंख खुली तो वह खूब रोया था, पर किसी ने नहीं सुना था।

वह फिर विह्वल सा सो गया था। सो गया था या अपने आप को भूल गया था!

सुबह हो गई थी।

बालक की आँख खुल गई थी।

वह भूख और प्यास से बड़े जोर से रो रहा था।

किसी ने बाहर से दरवाजा हिलाया था।

बालक और ज़ोर से रोने लगा था।

द्वार खुला था। एक बूढ़ा दिखाई दी थी। उसने बड़ी दया से देखा था।

बालक रूठा हुआ सा मुँह फेर कर रो रहा था। गोरा सा बालक। छोटा छोटा। बड़ा सा सिर था उसका।

फिर कुछ और लोग आये थे। उनमें स्त्रियाँ भी थीं।

वे लोग आपस में बातें करने लगे थे।

'क्यों रे? भूखा है?' वृद्धा ने पूछा था।

बालक तब उसकी छाती से लग कर रोने लगा था।

सबके नेत्रों में आँसू आ गये थे।

वृद्ध तुलसीदास के नेत्रों में अब भी पानी आ गया। आज वे उस धुंधली सी छाया में अपने जीवन का प्रारम्भ याद कर रहे थे। कितना दारुण था वह समय!! फिर याद आने लगा।

'मैं ले जाऊंगी इसे।' वृद्धा ने कहा था।

किसी ने कुछ कहा था। क्या था याद नहीं। पर वह बात बड़ी दया से कही गई थी।

वृद्धा ने कहा था: चल बेटा। मरने दे सबको। हाय कैसे निरदयी हैं सब लोग। रात भर बच्चा भूखा प्यासा तड़पता रहा। अरे बोलना ही जानता तो सबको भून कर रख देता। यह तो भगवान है भगवान।

वृद्धा ने दूध दिया था। गिलास मुँह से लगाया था। बालक ने रूठ कर मुँह फिरा लिया था। जैसे, रात तू कहाँ थी! वह क्या जानता था कि उस पर दया की जा रही थी, यह उसका अधिकार नहीं था। किंतु जीवन के प्रारम्भ में यह मेरा तेरा नहीं होता। पहले सीखा जाता है और यही आगे चलकर आत्मा को व्यूहों में बांध लेता है।

'पीले बेटा,' वृद्धा ने मनुहार की थी।

थोड़ा सा पीकर बालक ने कहा था : ग्रह्छ !

वृद्धा ने गिलास हटा कर कहा था : भूख मर गई है।

फिर पेट छूकर कहा था : अरे पी। अभी तो तेरा पेट खाली पड़ा है। पीले, जल्दी पीले........नहीं तो कौआ गिलास ले जायगा।

'गाछ्छ !' बालक ने कहा था, अर्थात् गिलास और दोनों हाथों से गिलास फिर पकड़ कर गट गट दूध पीने लगा था।

बालक बैठ जाता।

वृद्धा कहती : रामगुलाम !

'अम्माँ वी।'

बस र, लको ब कहता था। तुतलाता था।

'तू कहाँ गया था ?'

'बाहब गवा था।'

'क्यों ?'

'वळ्क वे गया था।'

वृद्धा हंसती।

कहती : सुनती हो जेठी !

पड़ोस की कठोर सी लगने वाली एक बुढ़िया निकल आती। कहती : क्या है ?

'मेरा बेटा क्या कहता है ?'

'भला तेरा बेटा !' वह कहती।

बालक देखता, उसे अम्मां में अनन्त स्नेह दिखता। जेठी अत्यन्त कर्कशा थी। वह उससे डरता था। वह कभी कभी डाँटती थी। फिर बालक उसके पास नहीं जाता था। अम्मां के आंचल में मुंह छिपा लेता था।

'क्यों कड़ी बात कहती हो ?' अम्मां कहती।

'कड़ी !! तू ही पछतायेगी किसनो। यह तो मंगन कुल का जाया है। इसे तू क्यों ले आई है ?'

'छिः ! जेठी ! घमण्ड की बात न करो। कौन किसे ले आने की सकत रखता है। जो कुछ होता है उसकी मर्जी से होता है।'

अम्मां का हाथ आकाश की ओर उठ गया था।

बालक खिसियाया हुआ बैठा था।

'आ जा बेटा रोटी खा ले।' वृद्धा ने कहा था।

बालक चुप उठ आया था।

वृद्धा ने ठिठक कर देखा था जैसे चौंक उठी हो।

पूछाः तुझे किसी ने कुछ कहा था ?

'नहीं तो !'

'तो तू आज रूठा क्यों नहीं ?'

बालक आश्चर्य में पड़ गया।

वृद्धा ने कहा : मेरे लाल। तू रूठ मैं मनाऊंगी, यही तो तेरा बखत है। फिर कौन किसे पूछता है, अभी से बूढ़ा बूयाँ होता है ऐसा ?

वृद्धा का स्वर काँप उठा था।

बालक चिल्लाया था : 'अम्मां !' और वृद्धा के गले से चिपट कर रोने लगा था। वह भी रोने लगी थी। पता नहीं वह क्यों रो रही थीं। पर वहाँ वे रो अवश्य रहे थे।

तुलसीदास चौंक उठे। वह वही स्नेह था जो अब तक शरीर में रक्त बन कर बह रहा था।

फिर''''

रामगुलाम सात बरस का था। समझता था।

वह पथ के किनारे एक दूकान के छज्जे पर बैठा था।

'अरे कौन है रे?' दूकानदार ने पूछा।

नौकर बोला: 'वही है राजापुर का कुसौन।

रामगुलाम ने सुना। सारे कस्बे का कुसौन।

नौकर ने फिर कहा: अरे उठ यहाँ से चल। गुरू हटता नहीं। देखा!

सामने पण्डित हरिहर आगये थे। वे बोले: अरे बैठने दे उसे बिचारे को। काहे को भगाता है।

'गुरू! क्या कहते हो? तुम तो ब्राह्मन हो!'

'ऐं?' गुरू चौंक उठे—'बोल: क्यों क्या बात है?'

'चौपट कर देता है ये बेटा। यों' कह कर नौकर ने कुत्ते की तरह अकड़ते हुए कहा: 'समझे महाराज!' उसने फिर स्वर उठाया: 'जनम लेते ही माँ को खा गया। उसके बाद बाप मार डाला। और फिर नाइन ने दूध पिलाया तो चट कर गया। एक बुढ़िया ने दया की तो उसे उड़ा दिया। बड़ा पहुंचा हुआ है। सनीचर है सनीचर। जिधर आँखें घुमादीं उधर ही दुनिया को चक्कर खिला दिया।'

ब्राह्मण हरिहर ने कहा: अरे! तब तो बड़ा ही मनहूस है यह। भाग बे भाग।

बालक उठ खड़ा हुआ और हताश सा इधर उधर देख कर बढ़ चला। पीछे से ठहाका सुनाई दिया।

आज उसका मन विक्षुब्ध था। क्यों सब उससे घृणा करते थे! उसका तो ससार में कोई नहीं था!

बालक को भूख लगने लगी थी।

वह आदत के मुताबिक बढ़ चला। पेट की आग जलने लगी तो सब कुछ स्वाहा होने लगा।

बालक ने एक द्वार पर खड़े होकर कहा: ऐ बाबा! भूख लगी है, रोटी दे ओ बाबा!

भीतर से एक स्त्री ने देखा और क्षण भर घूरती रही और कहा: पेट में से निकलते ही माँगने चला आता है, जरा इसे तो देखो। कैसा कलजुग है मैया

मैया ! बाबा रोटी दो !

उसने नकल की।

छपाक ! किसी ने गिलास भरा पानी उछाल दिया।

बालक भीग गया। भाग चला।

कुछ देर खड़ा रहा। क्रोध आ रहा था। पर भूख लग रही थी। उसने कुंए पर जाकर पनहारिन से कहा : मैया ! पानी पिला दे।

'तेरा बाप ही तो मुझे प्याऊ पर रख गया है।' स्त्री ने चटक कर कहा। 'पानी पिला दे। भिखारी का बेटा, राजा का सा हुकम। घर में बच्चे भूखे बैठे होंगे। उन्हें रोटी दूं कि तुझे चराऊँ ?'

वह चली गई।

बालक कुंए की जगत पर बैठ गया।

कब तक बैठा रहा, याद नहीं।

रात हो गई थी।

वह द्वार द्वार बिलबिलाता डोल रहा था।

'रोटी दो भागमान।'

'भूखा हूं।'

'भूखा हूँ।'

'रोटी दो ! तुम्हारा भगवान भला करेगा।'

'अरे कौन है ?' किसी ने कहा—'कौन है वहाँ ?'

'बाबा ! एक भूखा लड़का हूँ।'

'लड़का है।' किसी स्त्री ने दया से कहा—'राम राम ! अनाथ होगया लगता है। हममें इतनी ताकत तो नहीं कि तेरी मदद कर सकें, पर द्वार आया है तो तू भी खाता जा।'

बालक वहीं बैठ गया था।

स्त्री आई थी।

हाथ पर दो रोटी रख गई थी।

कितनी अच्छी लगी थीं वह रोटियाँ। वह धीरे-धीरे खाता रहा था। चाहता था वे रोटियाँ कभी खतम ही न हों। स्त्री भीतर चली गई थी। जब वह खा चुका था तब काँपती हुई दुनिया स्थिर हो चुकी थी। अब बालक को कोई क्रोध नहीं था। केवल संसार की भलमनसाहत का ही चित्र आँखों के सामने था।

आखिर तो देते ही हैं ये लोग ?

क्यों देते हैं !!

और फिर वह स्वयं बहुत बुरा है !!

पापी है !!

मनहूस है !!!

इस संसार में सब पर दया करने वाले लोग मौजूद हैं।

उसकी इच्छा हुई गा उठे। सुना हुआ एक भजन गुनगुनाने लगा :—

राम तू कृपालु है,

राम तू दयालु है।

वह गीत इतना ही था, या इतना ही याद था, यह तब उस बालक को चिंता नहीं थी।

इतना वह जानता था कि राम कोई है जरूर ! क्योंकि जो देता है वह उसका नाम जरूर लेता है। जो नहीं देता, वह उसका नाम ही नहीं लेता !

राम कोई अच्छा नाम है। अच्छा ही आदमी है ! आदमी !! नहीं वह भगवान है ! भगवान है !!

भगवान कौन है ?

वही तो सबकी सुनता है !!

मेरी भी वही सुनता है !!

जरूर सुनता है, नहीं तो यह रोटी कौन दे देता है ? राम ही तो देता है।

बालक का चिंतन फिर एक व्यथा से भर गया था। राम की कृपा को वह जैसे संभाल नहीं सका था। दया ही तो असंख्य यातनाओं की अनुभूति को जन्म देती है। पशु क्या किसी प्रकार का सम्मान चाहता है ? नहीं। मनुष्य

क्यों चाहता है !

पेट भरना ही यदि सत्य है तो फिर आत्मसम्मान बीच में क्यों आता है ?

पर क्या यह आत्मसम्मान सच है ?

नहीं, पेट इससे भी बड़ा सत्य है।

भगवान पेट को ही तो देता है। दूसरे लड़के प्यार से खिलाये जाते हैं। रामगुलाम द्वार द्वार टूक माँगता फिरता है। क्यों ?

क्योंकि उसके कोई नहीं है।

क्यों नहीं है ?

वह बुरा जो है, मनहूस जो है।

वह तो सब को मार डालता है।

पर वह ऐसा क्यों है ?

राम ने ही उसे ऐसा बनाया है ? राम बड़ा निरदयी है। रामगुलाम ने क्या किया था जो ऐसा उसे दण्ड दिया गया है।

पर सहसा भय जाग उठा।

रामगुलाम तू क्या सोच रहा है !

क्यों ?

तू राम को निरदयी कहता है ?

अभागे कल से रोटी भी नहीं मिलेगी।

तू नीच है, भयानक है। लोग तुझसे घृणा करते हैं। एक राम ही तो तेरा भरोसा है। वह भी अगर हट गया तो फिर तेरा है ही कौन ? और रामगुलाम फिर जल्दी जल्दी गाने लगा। जैसे वह अपने को अब राम से छिपा लेना चाहता था—

राम तू कृपालु है........

राम तू दयालु है........

राम ने तब नहीं सुना होगा। नहीं, नहीं सुना होगा।

फिर विचार आया। क्यों नहीं सुना होगा।

तो फिर ?

कल से भूख !!

हे भगवान दया कर, बालक कह उठा—'तेरे बिना तो मेरा कोई नहीं, तेरे बिना मुझे कौन खाने को देगा। दर दर जाता हूँ, ठोकरें खाता हूँ, एक तू ही तो मुझे बचाता है'''तू भी रूठ जायेगा तो इस संसार में मेरा है ही कौन''''''''

रात के गहरे अंधकार में बालक बैठा था। एक विशाल छाया सामने डोलने लगी। काली काली। बालक भय से चिल्ला उठा। वह अकेला था, चारों ओर सुनसान छाया हुआ था। काली छाया पास आकर खड़ी होगई।

कौन था !!

बिजार !!!

बालक को चैन आया।

बिजार ने सूं सूं की और फिर अपना ककुम हिलाता हुआ भारी देह को फरफराता हुआ आगे बढ़ गया।

शिव का नंदी है। बालक ने दुहराया।

शिव बड़े मेहरबान हैं। उनके सेवक भूत पिशाच हैं।

बालक कांपने लगा। थर्रा उठा। अंधकार में कोई कहीं चिल्लाया। वह बिल्लियाँ लड़ रहीं थीं। लगा कोई रो रहा था। बालक सिकुड़ कर स्तब्ध हो गया और फिर बड़बड़ाने लगा : हनूमान! हनूमान! जय बजरंगबली, जय बजरंगबली!

कब तक वह आँखें मींचे नाम रटता रहा, यह याद नहीं रहा। पर जब आँखें खोलीं थीं तब पौ सी फट रही थी।

बालक वहीं सो गया था।

सुबह उसके मुख पर असंख्य घिनौनी मक्खियाँ भिनभिना रही थीं। बजार चलने लगा था।

उठा था तो भूख आंतों में कड़कड़ा रही थी। क्या करता। वहीं बैठ गया और हाथ फैलाकर कहने लगा : भूख लगी है बाबा! खाने को दो''' कुछ भीख दो'''' भगवान भला करेगा, राम कृपा होगी'''

बालक ने सीधे हाथ से पेट बजाया। और चटाचट की आवाज़ हुई। वह जैसे पेट की सत्ता को बता रहा था कि देखो, यह है, वर्ना मैं तुमसे कभी नहीं मांगता,'''कभी नहीं माँगता''''

वह असहाय छोटा सा कोमल बालक वहाँ अपने जीवन और सत्ता के लिये पुकार रहा था'''' अपना अभिमान गला कर पेट बजा रहा था''''''''

हलवाई की दूकान से गाहक दूध के कुल्हड़ फेंक देते। कुत्ते चाटते। रामगुलाम प्यासी आँखों से देखता हुआ कुत्तों से जलता हुआ होठों पर जीभ फिराने लगता। गाहक देखते और कहते : अरे यह किसका लड़का है।

'यह लड़का है ?' कोई कहता है—'कुत्ता है कुत्ता।'

और जब सब चले जाते तो रामगुलाम कुत्ते से चिपट कर सो जाता। अपनी रोटी में से उसे खिलाता। अब उसे रक्षक मिल गया था। रात का भयानक अंधेरा, बरसात की वे रातें जब बिजली खरतर होकर कड़कती और बादल भयानक स्वर से गर्जन करते, शीत की वे काटती हवाएं जब दाँत से दाँत भिंच जाते, गर्मी की वे भयानक लुएं, सब उस कुत्ते के सहारे एक एक करके कटने लगीं।

रामगुलाम कुत्ते से कहता : क्यों रे तू मुझे छोड़कर तो नहीं जायेगा ?

कुत्ता कूं कूं करता।

रामगुलाम कहता : तू कितना अच्छा है। तू मेरा बड़ा भाई है। देख, सब मुझसे घिन करते हैं, तू मुझे चाहता है। तेरे सिवाय इस दुनियाँ में मेरा और है ही कौन ?

कुत्ता उसके गाल से सिर सटा देता। कितना प्रेमी जीव था। वह जैसे इस बालक की समस्त वेदना को समझता था। वह तो बोलता भी नहीं था, परन्तु यह अनुभूति की गहराई तो जैसे विचार की वस्तु नहीं, सत्ता के तादात्म्य की वस्तु थी। प्रवृत्ति ने प्रवृत्ति से मेल खाया था। कुत्ता स्नेह से बैठ जाता। वह शेर की तरह गर्दन उठा देता जैसे वह रक्षक था। बालक निर्द्वंद्व सा उसकी बगल में लेट जाता। फिर सो जाता। कुत्ता बैठकर पहरा दिया करता। क्यों ? क्योंकि रामगुलाम अपनी रोटी में से उसे हिस्सा देता था।

रामगुलाम कहता : तू जानता है सब। सब जानता है। मैं तेरे सहारे से ही जीता हूँ। मुझे रात को बड़ा डर लगता है कुंजू!

कुंजू कुत्ता तब अभय सा देता। पूंछ हिलाता। फिर वे उठ खड़े होते। कुत्ता डण्ड लगाता और फिर रामगुलाम के साथ दुलकी सी चाल चलता। रामगुलाम धोती का फटा मैला टुकड़ा पहने रहता। कंधे पर किसी का फेंका हुआ ढीला सा एक झंगला था। मैला, पैवंद लगा। सिर के बाल कंधों तक झूलते थे, घने! और उसका मुख सुन्दर था। आँखें बड़ी बड़ी और गहरी थीं, काली-काली। बचपन भी कैसी आयु है! खाने को नहीं मिलता, पर चेहरे पर मासूमियत रहती ही है, उसे तो कोई नहीं छीन सकता। गाल अपने सहज स्वभाव से कुछ उठे हुए ही रहते हैं। वह छोटा सा बालक कुत्ते के साथ नंगे पाँव घुटनों-घुटनों धूल तक सना हुआ पथों पर भीख माँगता डोला करता।

लड़के खेल रहे थे। गेंद तड़ी। वे अच्छे-अच्छे कपड़े पहने थे। रामगुलाम खड़ा खड़ा देख रहा था। कुंजू कुत्ता चला गया था।

रामगुलाम की तरफ गेंद आगई थी। उसने उठाकर फेंकी थी। किसी के सिर में लगी थी। चोट कनपटी में लगी थी।

वह बैठ गया था।

बालकों ने मुड़कर देखा था।

गंदा! मैला कुचैला!!

भिखमंगा!!

'हमारे साथ तू खेलेगा?' वे चिल्लाये।

उन्होंने उसे पकड़ गिराया था! मारा था।

रामगुलाम बहुत रोया चिल्लाया था।

पर वे मारते ही जा रहे थे।

रामगुलाम बेहोश हो गया था।

जब आँख खुली थी केवल कुँजू पास था। अङ्ग अङ्ग में पीड़ा हो रही थी। रामगुलाम अब उठ कर बैठा था और वह घुटनों में सिर रख कर फूट-फूट कर रो उठा था। फूट फूट कर रो उठा था। दारुण यंत्रणा ने आज उसे व्याकुल कर दिया था। कौन था उसका सहारा।

कुत्ते ने कूं कूं करके कुछ कहा था।

अंधेरा घिर आया था।

वह भाग चला था। कुंजू रक्षा के लिये पीछे भागा था, जैसे एक बार गैर हाज़िर रहने का शोक उससे भूले न भुलाया जा रहा था।

मंदिर में असंख्य दीपक जल रहे थे।

रामगुलाम भीतर भागा।

लोग चौंक उठे।

आठ बरस का बालक मूर्ति के सामने जगमोहन में चौखट पर सिर पटक कर रोने लगा, चिल्लाने लगा : निरदयी! तू भगवान है। तूने मुझे जन्म क्यों दिया! लोग मुझसे घिन करते हैं। द्वार द्वार भीख मांगता हूँ। वे मुझे आदमी नहीं मानते। कुत्ते के साथ सो-सो कर कितनी डरावनी रातें कांप-कांप कर काटता रहा हूं। मैंने क्या किया था। क्यों नहीं मार डालता मुझे! क्यों नहीं मार डालता मुझे....

उसका वह फूट-फुट कर रोना देखकर एक चिल्लाया था : अरे मनहूस! अपने भाग्य को यहाँ रोने आया है? जा निकल यहाँ से।

हलवाई का नौकर बैठा माला फेर रहा था। बोला : अरे यह वही है। जानते हो?

'कौन?'

'राजापुर का कुसौन।'

सहसा एक लंबा और गंभीर मुख का ब्राह्मण गरुड़ परिक्रमा करते करते रुक गया।

'हाँ हाँ,' हलवाई के नौकर ने कहा—'तुम नहीं जानते? यह बला सोरों की है।'

'सोरों!' ब्राह्मण अपने आप बड़बड़ाया।

नौकर कह रहा था: वहाँ आत्माराम दुबे थे। उन्हीं का बेटा है। माँ हुलसी तो जनम देते ही मर गई। मूळों में जनम हुआ है इसका। जो पालता है वही मर जाता है। सारे राजापुर की रोटियाँ तोड़ता फिरता है। मैं कहता हूं एक दिन सारे कस्बे को इसका दण्ड भुगतना पड़ेगा।

ब्राह्मण आगे बढ़ आया।

स्वामी नरहरि को बालक की ओर बढ़ते देख कर पुजारी चौंक उठे।

'किसका पुत्र है यह?' स्वामी नरहरि ने गम्भीर स्वर से पूछा।

हलवाई के नौकर ने साष्टांग दण्डवत् की और कहा: महाराज! पंडित आत्माराम दुबे का।

'ब्राह्मण का पुत्र!' नरहरि के स्वर में कंप और वेदना भर गई, मानों वे इस दारुण चोट को सह नहीं सके थे।

'हाँ महाराज!'

नरहरि ने देव विग्रह की ओर हाथ उठा कर कहा: अक्षय जीवन के स्वामी! वेद पुरुष! देख रहे हो। कलि का ताण्डव नृत्य हो रहा है! ब्राह्मण के मुख में से जन्म लेने वालों के पुत्र पथों पर घर घर टुकड़े तोड़ते, कुत्तों के साथ जीवन व्यतीत कर रहे हैं। म्लेच्छों के शासन में और होगा भी क्या प्रभु! देश और प्रजा में धर्म लुप्त हो रहा है। सारी मर्यादा खंडित पड़ी है। अंधकार निगमागम को ग्रसे ले रहा है।

ब्राह्मण का वह गम्भीर गर्जन सुन कर हलवाई का नौकर थर थर काँपने लगा। राजापुर के लोग जो इधर उधर खड़े थे वे स्तब्ध रह गये। नरहरि की दीर्घकाया रामगुलाम के पास पहुँच गई। रामगुलाम को लगा स्वयं भगवान उस दिव्यमूर्त्ति में उतर आये थे। उसने उनके पाँव पकड़कर कहा: भगवान्! मेरे राम! मेरे राम!!

बालक की वह आर्त्त वाणी सुन कर स्वामी नरहरि का हृदय विचलित हो उठा। उन्होंने कहा: राजापुर और सोरों के निवासियो! तुमने वेदपुरुष

का निरादर किया है। तुमने ईश्वर का अपमान किया है। ब्राह्मण ब्राह्मण ही है। जानते हो यह बालक आज क्यों रो रहा था। क्यों नहीं इसने भिखारी और कुत्सित प्राणी की भांति जीना स्वीकार कर लिया? इसलिए कि इसमें ब्रह्मा का तेज है। यह पृथ्वी के देवता का रूप है। यह यह बालक नहीं है, यह अग्नि है। सनातन काल से चले आते शासन का यह समर्थ उत्तराधिकारी है। तुमने ब्राह्मण के पुत्र को कुत्तों के साथ दारुण दुःख देकर रुलाया है? ऐ मधुसूदन! हे राक्षस कुल हंता! देखते हो। इसी पवित्र जम्बूद्वीप में यह क्या हो रहा है?' ब्राह्मण जैसे व्याकुल हो गया। वह अपने आपसे बात करने लग गया—'अरे कलि! तेरा इतना दुस्साहस! तू पृथ्वी पर रहने वाली देव ज्योति को ही बुझा देना चाहता है? जानता नहीं? ब्राह्मण का बीज अंगार है। अत्याचार की प्रचण्ड झंझा भी उसे बुझा नहीं सकती! नारायण! जर्नादन! धिक्कार है सूकरक्षेत्र के ब्राह्मणों को जिन्होंने अंधविश्वास में इस बालक को असहाय त्याग दिया। धिक्कार है राजापुर के ब्राह्मणों को जिन्होंने ऋषि गौरव को भूल कर अपने ही स्वजातीय बालक को इतना जघन्य जीवन व्यतीत करने को बाध्य किया। यह कौन है? यह भृगु और अंगिरा की पवित्र संतान है। इसी रूप को देखकर स्वयं भगवान रामचन्द्र और स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ने वंदना की थी। यह मुनियों की संतान है, यह साधारण मानव नहीं है। यह ब्राह्मण है। इसकी वंदना करके प्रायश्चित्त करो, अन्यथा कलि तुम सबका सर्वनाश कर देगा।'

ब्राह्मण की वह गंभीर ललकार सुन कर सब लोग काँप उठे।

स्वामी नरहरि ने हाथ बढ़ा कर कहा: 'ब्राह्मणो आओ! उद्धार करो। अब तक इस बालक का कोई संस्कार नहीं हुआ। इसे द्विज बनाओ। जो भक्ष्याभक्ष्य, छूआ अनछुआ इसने अज्ञान में खाया है, उसका प्रायश्चित्त कराओ। ब्राह्मण का पुत्र ब्राह्मण है।' फिर वे हठात् रामगुलाम से बोले: 'तूने म्लेच्छ का तो छुआ नहीं खाया?'

'नहीं भगवान!' बालक ने गर्व से सिर उठा कर कहा।

नरहरि ने रामगुलाम को वक्ष से लगा लिया और आनन्द से रो पड़े। उन्होंने कहा: देवाधिदेव! तूने रक्षा करदी। तूने रक्षा करदी।

'मैंने किसी अछूत का दिया भी नहीं खाया।' बालक ने कहा।

नरहरि गद्‌गद हो गये। उन्होंने पुजारी से कहा : चरणामृत दो ब्राह्मण देवता! मैं बालक के समस्त संस्कार करूँगा।

पुजारी ने चरणामृत दिया।

नरहरि ने कहा : तेरा नाम क्या है वत्स!

'रामगुलाम!'

'नहीं। आज से तू रामबोला है। इसे पी जा!'

बालक ने पीकर पाँवों पर सिर रख कर प्रणाम किया। नरहरि ने कहा। 'रामबोला! कल मैं तेरा यज्ञोपवीत संस्कार करूँगा। तू यहीं रह।' फिर पुजारी से कहा : 'आज इसे खाने को भोग दो ब्राह्मण देवता।'

पुजारी ने कहा : ले तुलसीदल खाले। इसमें ही समस्त पापों को हर लेने की शक्ति होती है।

'ठीक है,' नरहरि ने कहा—'आज से रामबोला नहीं, तेरा नाम तुलसीदास है। समझा! अब तू पवित्र हुआ। कल और भी संस्कार होंगे। याद रख तू ब्राह्मण है। ब्राह्मण!' कहते हुए नरहरि के उन्नत ललाट पर एक गौरव छा गया। उन्होंने हाथ उठा कर कहा : 'वत्स! तेरे पूर्वजों के सामने देवताओं और स्वयं नारायण ने घुटने टेक कर वंदना की है। तेरे पूर्वज महर्षि भृगु ने जब क्रुद्ध होकर साक्षात शेषशायि विष्णु के वक्ष पर पदाघात किया था, तो अनंत नारायण ने मुस्करा कर केवल उनका पांव दबा कर उन्हें प्रसन्न कर लिया था। तेरे पूर्वजों का क्रोध विकराल था वत्स। अत्याचारी राजा वेन के प्रहारों से जब प्रजा त्राहि त्राहि करने लगी थी, तब ब्राह्मणों ने उस दुर्धर्ष दुराचारी को हुँकारों से ही भस्म कर दिया था। मदांध सगर के ६०,००० पुत्रों ने जब महर्षि कपिल पर लांछन लगाया था तो उस समय ऋषि की एक दृष्टि से वे सब राख होकर गिर पड़े थे। पुत्र! महर्षि दुर्वासा के प्रचण्ड क्रोध के कारण, एक ही शाप से छप्पन करोड़ यादवों का सर्वनाश हो गया था। तू उन देदीप्यमान ब्रह्मपुत्रों की संतान है एक एक ब्राह्मण वेद के रहने का पवित्र स्थान है। आज म्लेच्छों के कारण प्रजा में कलि का अट्टहास हो रहा है और व्यामोह में वे ही पवित्र ब्राह्मण अपने त्रैलोक्य को कंपित करने वाले पराक्रम

को भूल कर आज भटक रहे हैं ? क्या समझते हो तुम लोग ! यह अन्याय यों ही चलता रहेगा ? शूद्र ब्राह्मण बन रहे हैं, म्लेच्छ धर्म नाश कर रहे हैं ! चारों ओर वर्णाश्रम का ध्वंस हो रहा है ! लेकिन याद रखो । अनेक बार पाप ने सिर उठाया है । कहाँ है वह हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यप, कहाँ हैं नमुचि और विप्रचित्ति । कहाँ हैं रावण और कंस ! फिर अवतार होगा—

और ब्राह्मण का वज्र स्वर गूँजा—

ब्राह्मण क्षत्रियविशां शूद्राणां च परंतप
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभाव प्रभवैं गुणैः !

योगेश्वर कृष्ण ने कहा है कि हे परंतप ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्यों के तथा शूद्रों के भी कर्म स्वभाव से उत्पन्न हुए गुणों के आधार पर विभक्त किये गये हैं अर्थात् पूर्वकृत कर्मों के संस्कार रूप स्वभाव से उत्पन्न हुए गुणानुसार विभक्त किये गये हैं । यही कारण है कि ब्राह्मण का पुत्र ब्राह्मण ही है । पुत्र ! उठ ! शेषशायी नारायण ने स्वयं श्रीकृष्ण के रूप में आकर कहा है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत
अभ्युत्थानम धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे !

पुजारी ने बाहर आकर कहा : बोल तुलसीदास ! स्वामी नरहरि गुरु हैं ! उनके चरण पकड़ कर बोल—

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा
त्वत्प्रसादान्मयाच्युत
[illegible]
[illegible] वचनं तव ।१

बालक तुलसी दास ने शुद्ध स्वर में धीरे धीरे अपनी कोमल और पतली आवाज में श्लोक दुहराया ।

१. हे अच्युत ! आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया है । और मुझे फिर स्मृति प्राप्त हुई है । इसलिये मैं संशय रहित हुआ स्थित हूँ और आपकी आज्ञा का पालन करूंगा ।

स्वामी नरहरि आनन्द से रोते हुये पुकार उठे—सुनते हो। ब्राह्मण का पुत्र देवभाषा का कैसा शुद्ध उच्चारण करता है। अरे ब्राह्मण के मुख में ही सरस्वती बैठती है। वही परा पश्यंती और वैखरी का स्वामी है। उसकी जिह्वा पर सृष्टि के प्रारम्भ से मृत्युञ्जय गिरा अपना निवास करती आई है। सुनते हो!

सब गद्‌गद से खड़े रहे।

भीड़ में से निकल कर किसी ने बालक के मैले वस्त्र उतार कर उसे स्वच्छ वस्त्र पहनाने को बुलाया। बालक को नहलाया गया। पञ्चगव्य पिला कर वस्त्र पहनाये गये।

गोरे बालक के भींगे और कढ़े हुए केश उसके कंधों पर बिखर गये। माथे पर चन्दन लग गया। क्षण भर पहले का भिखारी इस समय कितना सुन्दर लग रहा था। उसके बैठने में कितना गौरव था। आज उसका सिर उन्नत था। वह जैसे सबको भूल गया था। या तो वह भगवान की मूर्ति को देखता था, या फिर गुरु नरहरि के चरणों की ओर।

आरती होने लगी। असंख्य दीप शिखाएँ अन्धकार में नाचने लगीं। चमचमाते चांदी, तांबे और पञ्चधातु के पात्र आलोक में बार बार भास्वर हो उठते। अगरुधूम जगमोहन में घूमने लगा। गूंजती झालरों और घननाद करते विशाल घण्टे का तुमुलनिनाद मन्दिर और आकाश में गूंजने लगा। ब्राह्मणों के मुख से प्रतिध्वनित होती हुई वेदध्वनि अब अंतराल में भरने लगी। आरती की शिखाओं के घूमने से कभी भगवान का मुख देदीप्यमान हो उठता, कभी उनके चरण उजागर हो उठते।

असंख्य लोग एक ध्यान एक लौ से तन्मय हुये हाथ जोड़े खड़े थे। कोलाहल ने उनके सांसारिक विक्षेपों को क्षुब्ध करके क्षण भर को हटा दिया था। वह प्रचण्ड कोलाहल, वह जगमगाती शिखाएं, वह पवित्र करने वाला अगरु धूम, और सस्वर गूंजने वाली वह वेदध्वनि, ये सब मिलकर व्यक्ति को एक महान की ओर ध्यानस्थ करने लगे, वही महान जो साकार रक्षक बनकर धनुष बाण लिये खड़ा था।

आरती समाप्त हो गई। ध्यान टूटा। लोग चिल्ला उठे—'बोल श्री सीता राम जी महाराज.......की जय!'

वह प्रचण्ड स्वर बारबार उठा और गूंजा। तब पुजारी ने आरती का कपूर बाहर फेंक दिया। जलता कपूर गंध दे रहा था। लोग उसके धूंए को छूकर आंखों से लगाने लगे। तुलसीदास ने भी लगाया। सब दण्डवत करने लगे। नरहरि भी लेट गये। तुलसीदास भी लेट गया। जब वे सब उठे तो जीवन हल्का सा दिखाई दिया।

स्वामी नरहरि स्तुति करने लगे।

पुजारी ने तुलसीदास से कहा : वत्स ! तू भी प्रार्थना कर !

बालक ने नरहरि की ओर देखा और अभय मुद्रा देखकर हठात् उसके मुख से निकला—

मेरा भगवान मेरा गुरु है महाराज ! वही मेरा राम है।

नरहरि ने आश्चर्य से आँख फाड़ कर देखा और फिर विभोर स्वर में पुकार उठे—जनार्दन ! गो ब्राह्मण और वेदोद्धारक ! तेरी लीला तेरी ही। सुवर्ण कैसी भी मिट्टी में मिला रहे, किंतु सोना सोना ही है, मिट्टी मिट्टी ही है—

भोर हो गई थी। मंदिर के सामने स्वामी नरहरि बैठे थे। अन्य पंडितजन भी उपस्थित थे। वे रेशमी पटुके गलों में पहने थे और उनकी धोतियां पीले रेशम की थीं। वे हवन करने लगे। तुलसी को बिठाया गया। वेदमंत्रों से उसकी शुद्धि की गई। सिर मुँडा दिया गया। वही बालक जो कल तक सबको भयानक लगता था आज वह शांत और सौम्य दिखाई देता था। स्त्रियों के मन में भी उसके प्रति करुणा थी। आज उन सब लोगों ने देखा कि वह तो केवल एक छोटा सा बच्चा था और कुछ भी नहीं। किसने जबर्दस्ती यह भ्रम पैदा कर दिया था कि वह भयानक था।

स्वयं नरहरि ने ब्रह्मगाँठ तुलसी की अनामिका और अँगूठे के बीच में दबवा कर कहा : बोलो-यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं

प्रजापतेऽ........

तुलसीदास पतले स्वर से दुहराने लगा। उसके कंधे पर जनेऊ चमकने लगा।

'देखते हो!' नरहरि ने कहा—'कितना तेजस्वी और होनहार लगता है यह ब्राह्मण का बालक!' फिर उन्होंने आकाश की ओर हाथ उठाकर कहा: 'हे परमात्मा! ब्राह्मणसंतान आज पेट की भूख से व्याकुल होकर द्वार द्वार भटक रही है। क्या ऐसा दिन नहीं होगा कि फिर से वसुंधरा मुक्त हो सके।

पुजारी मंगल ने कहा: 'स्वामी जी! सूरी शेरशाह ने जो हुमाँयूँ को भगा दिया था न, वह मुगल फिर लौट आया है, सुना है मैंने।'

'सब ही एक हैं भाई!' नरिहरि ने कहा—'सब ही म्लेच्छ हैं। पाँच शताब्दियाँ बीत गईं। म्लेच्छों ने काश्मीर, पंजाब, सिन्धु, बंगाल, कामरूप, सबको कुचल दिया। देवगरि से इन्हीं ने तो २७ मन जवाहिरात लूटा था! कितनी कुलीन जातियों को पदाक्रांत नहीं किया। एक ही सिंह था, राणा संग्रामसिंह अब वह भी नहीं रहा। पता नहीं भगवान की शायद यही मर्जी है। सोमनाथ का विध्वंस होने पर भीमदेव ने उसे फिर बनवाया था, परन्तु वह फिर तोड़ दिया गया। इस पुनीत वसुधा के देवमन्दिर यों ही नष्ट हो रहे हैं! और फिर मुसीबत तो दूसरी है।

मंगल ने कहा: क्या गुरुदेव!!

'म्लेच्छ क्या हैं मंगल!' नरहरि ने कहा, 'शूद्रों ने सिर उठाया है। वे लोग वर्णाश्रम नहीं मानते। राजा विधर्मी है, सब कुछ रसातल को चला जा रहा है। समझते हो न?'

'क्यों नहीं, क्यों नहीं,' एक और वृद्ध पुजारी ने कहा—'लोगों में श्रद्धा ही नहीं रही। हम क्या करें?'

'संस्कृत वे जानते नहीं, उधर जोगियों ने और इन पाषंडी पंथवादियों ने तो निगमागम की प्रमाणिकता को ही चुनौती दे दी है!' मंगल ने हाँ में हां मिलाई।

नरहरि ने कहा: यही तो इस अधोपतन का कारण है।

'तो गुरुदेव!' तुलसीदास पूछ बैठा—'उन्हें भाषा में क्यों नहीं समझा देते सब। वे सब मान जायेंगे।'

मंगल ने कहा : 'यह कैसे हो सकता है रे। देवभाषा का खजाना केवल ब्राह्मणों की संपत्ति है।'

नरहरि ने तुलसीदास को घूर कर देखा और जैसे वे कुछ सोच में पड़ गये।

यह बालक अचानक ही क्या कह गया था।

बात तो ठीक थी।

जनता तो ठीक से अपने धर्म को जानती ही न थी! धर्मशास्त्र बनते थे, उनकी टीकाएँ बनती थीं, टीकाओं की व्याख्याएँ लिखी जाती थीं, व्याख्याओं पर कारिकाएं लिखी जाती थीं, किंतु वह तो सब ब्राह्मणों में संस्कृत के माध्यम से होता था! जनता को यह निर्गुणिये, नीच जातियों के पाषंडी बहका लेते थे।

नरहरि सोचने लगे।

न जानने वाली पूजा में इतनी श्रद्धा है तो उसे बता देने पर वह कितनी अधिक श्रद्धालु नहीं हो जायेगी!

परन्तु तुलसीदास नहीं जानता था। वह तो कह कर ही भूल गया था। नरिहरि ने कहा : बेटा तुलसी!

'हाँ म्हाराज!'

'तुझे पढ़ना आता है?

'नहीं म्हाराज।'

'लिखना भी नहीं आता होगा!!'

'नहीं।'

'अ आ इ ई पहँचान लेता है?'

'नहीं।'

नरहरि को विषाद हुआ, बोले : 'देखते हो मंगल! ब्राह्मण के एकाधिकार को भी कलियुग छीन ले रहा है। तुलसीदास!!'

'गुरुदेव!'

'तुझे मैं पढ़ाऊंगा, तू पढ़ेगा?'

'मैं वही करूँगा गुरुदेव! जो आप कहेंगे।' तुलसीदास ने अबोध और निर्मल दृष्टि से देखते हुए कहा।

नरहरि प्रसन्न हो उठे।

कहा : मंगल प्रबन्ध करो।

'किसका म्हाराज ?'

'हम शूकरक्षेत्र लौटेंगे।'

'क्यों स्वामी जी ?'

'इस समय मन यही कह रहा है। भगवान की यही इच्छा है।'

'जो आज्ञा महाराज !'

'जी म्हाराज !'

'अवश्य गुरुदेव !'

नरिहरि की वह कृपा देखकर कई लोग तुलसीदास से मन ही मन जल उठे, पर स्वामी नरहरि के आगे कौन बोलता ? प्रबन्ध हो गया। नरहरि ने पुकारा : तुलसीदास !

'मैं यह रहा गुरुदेव !' तुलसीदास ने पतली आवाज से कहा : आपकी खड़ाऊं के पास तैयार खड़ा हूँ।'

नरहरि ने प्रसन्न दृष्टि से देखा और आगे बढ़ आये। तुलसीदास उनके पीछे पीछे चलने लगा।

बाहर रथ खड़ा था। नरिहरि तुलसीदास को लेकर सवार हुये। रथ चल पड़ा।

'गुरुदेव !'

नारायण पुकार रहा था।

तुलसीदास नहीं जागे।

'गुरुदेव !!' वह पुकार उठा।

'कौन ?' वे चौंक उठे।

'मैं हूँ नारायण ! आप सो रहे थे क्या ?'

'नहीं बेटा, मैं तो लेटा था।'

'वैद जी की दवाई मलूक ने पीस कर तैयार कर दी है।'

'नहीं अब लगाने की जरूरत नहीं है।

'क्यों गुरुदेव !'

'कोई अमर होकर नहीं आता वत्स।'

'गुरुदेव !!' नारायण ने रुँआसे कण्ठ से कहा।

'तू मोह में पड़ गया है नारायण ! क्या तुलसीदास ही जिया करेगा ? सौ बसन्त बीत कर पतझर बन गये। मृत्यु अन्त में आ रही है। मैं उसे आते हुये देख रहा हूं। वह आ रही है। धीरे धीरे पाँव रखती हुई बढ़ती चली आ है। नारायण ! चारों ओर अन्धेरा अंधेरा सा घिरा आता है, परन्तु उस घोर कालिमा में मेरा धनुर्धारी खड़ा हुआ मुझे अभय देता है।'

नारायण को कुछ सूझा नहीं। उसने देखा मलूक भीतर आ गया था। उसने हाथ से इशारा किया जैसे कोई उम्मीद नहीं दिखाई देती और इसके लिये उसने अपने हाथ की उँगलियां खोलकर फैला दीं। हथेली आकाश की अर्धसीमा के नीचे धरती की भांति खुलकर फैल गई। मलूक ने देखा तो उदासी से सिर हिलाया। पास आकर स्वर उठाकर कहा : बाबा !!

वृद्ध तुलसीदास ने मुस्करा कर आंखें खोल दीं और बोल उठे : पागल ! मैं क्या अब अचेत हूं ? जो तू चिल्लाता है ?

मलूक लज्जित हो उठा।

वृद्ध तुलसीदास ने कहा : मलूक ! तू तो बड़े सुरीले गले से गाता है।

मलूक चुप रहा।

'गा मलूक।' तुलसीदास ने फिर कहा।

मलूक बैठ गया।

और फिर उसने बिलावल की तान छेड़ी। उसकी [illegible] लहरों को सुन कर तुलसीदास के होठों पर मुस्कराहट छा गई। [illegible], गो आज

उस सौम्य और शांत मुख पर स्थिर हो गई थी। नारायण द्वार के पास दीवार से सिर टिकाये विभोर सा, और परिश्रांत सा खड़ा रहा।

गीत गूंजने लगा—

कहाँ जाऊँ कासों कहौं ?
को सुनै दीन की ?
त्रिभुवन तुही गति
सब अंगहीन की ॥
जग जगदीस घर
घरिन घनेरे हैं।
निराधार को अधार
गुनगन तेरे हैं ॥
गजराज काज खगराज
तजि धायो को ?
मोसे दोस-कोस पोसे,
तोसे माय जायो को ?
मोसे कूर कायर कुपूत
कौड़ी आध के।
किये बहुमोल तैं करैया
गीध आध के ॥
तुलसी की तेरे ही बनाए,
बलि बनैगी।
प्रभु की विलंब अंब
दोष दुख जनैगी ॥

आत्म समर्पण का वह स्वर गूंज कर कोठे में स्थिर हो गया। अपनी सत्ता की अभिव्यक्ति आज अपना अहं तोड़ कर तन्मय हो उठी थी। दैन्य अपने व्यक्तित्व के सीमित पाशों को खण्डित कर देना चाहता था।

'क्यों रुक गया मलूक ?' वृद्ध ने पूछा।

'बाबा !' मलूक ने कहा : 'गीत समाप्त हो गया।'

'गीत समाप्त हो गया पर विनय की याचना तो नहीं मिटी बेटा ! भगवान की प्रार्थना का भी क्या कोई अन्त है ? जहाँ शब्द समाप्त हो जाते हैं, वहाँ भी उसकी याद समाप्त नहीं होती । अन्त के पास जाते जाते तो सदैव ही सब माध्यम पूरे हो चुके हैं । वहाँ जहाँ पूर्ण है, वहाँ किसी भी प्रकार के अपूर्ण की सत्ता कब तक उसकी महत्ता को संभाले रह सकती है । गीत भले ही चुक जायें, पर मन की वाणी को ही उस पर उँडेलता जा बेटा ।'

मलूक और नारायण ने एक दूसरे की ओर देखा और उनकी आँखों में आदर भावना चमक उठी ।

महाकवि तुलसीदास अपने अन्तिम समय में जो कह रहे थे, वे उसे सुन सुनकर एक ओर दुखी और दूसरी ओर स्तब्ध हो उठते थे । इस समय व्यक्तित्व अपने समाज पक्ष को छोड़ना चाहता था । वहाँ आराधना एक नतशिर वंदना बन गई थी, जो अपने बाह्य आवरणों को काट कर फेंक देना चाहती थी ।

वृद्ध तुलसीदास ने कहा : और गा मलूक । आज के बाद में इस देह में फिर कभी यह पवित्र राम का नाम नहीं सुन सकूंगा । एक बार और गा मलूक । ऐसे गा कि तेरा स्वर ही मेरे रोमरोम में प्रतिध्वनित आलोक बन कर समा जाये और राममहिमा की अनन्त करुणा मुझे अपने आपमें आत्मसात् कर डाले, जब मेरे और मेरे आराध्य के बीच में कोई भी व्यवधान शेष नहीं रह जाये । ऐसे गा मलूक कि मेरी सत्ता तो मिट जाये परन्तु एक अरूप प्रार्थना सी कल्प कल्प तक गूंजा करे और उसमें से दीनदयालु कोदण्डपाणि सीतापति राम के चरणारविन्दों का ही गुणगान उदित होते हुए सूर्य के समान चमका करे ।

मलूक उस आह्वान को सुनकर अपने आपको जैसे भूल गया । उसे क्षणभर लगा कि वह महान की छाया में है, महान का वरदहस्त उस पर है, वह महान के महान गीत गाने को उकसाया गया है और स्वयं उसका जीवन लघु नहीं है । उसकी भी अपनी सार्थकता है । और वह सार्थकता राम के दरबार में उसे गुरुदेव की असीम कृपा से प्राप्त हो रही है । आत्मअनुभूति की वह एक झलक उसे असीम शक्ति से भर उठी । उसने फिर तान छेड़ी—

बारक बिलोकि बलि
कीजै मोहि आपनो।
राम दसरथ के
तू उथपन - थापनो॥
साहिब सरन पाल
सबल न दूसरो
तेरो नाम लेत ही
सुखेत होत ऊसरो॥
बचन करम तेरे
मेरे मन गड़े हैं
देखे सुने जात मैं
जहान जेते बड़े हैं।
कौने कियो समाधान
सनमान सीता को?
भृगुनाथ सो ऋषी
जितैया कौन लीला को?
मातु पितु बंधु हित,
लोक बेदपाल को?
बोल को अचल,
नत करत निहाल को?
संग्रही सनेहबस
अधम असाधु को?
गीध सबरी को, कहो,
करि है सराध को?
निराधार को अधार
दीन को दयालु को?
मीत कपि केवट
रजनिचर भालु को?

रंक निरगुनी नीच
जितने निवाजे हैं,
महाराज सुजन,
समाज ते बिराजे हैं।
साँची बिरुदावली
न बढ़ि कहि गई है,
सीलसिंधु ढील
तुलसी की बार भई है॥

वृद्ध तुलसीदास के नेत्रों से आनंद के अश्रु बह रहे थे। मलूक ने कहा : गुरूदेव !!

वह आर्त परंतु गद्‌गद् स्वर था।

'डर नहीं बेटा! भयभीत मत हो। देखता है। मैंने कुछ झूठ तो नहीं कहा? परंतु देख! तुलसी की बार तो ढील हो ही गई है।'

ढील शब्द में कितना ममत्व था, जैसे समुद्र हिलोरें ले रहा हो। गर्जन नहीं उसमें से प्रार्थना का समर्पण गूंजता है, पवनरूपा यातना उसकी उद्वेगभरी वासना की लहर लहर को दृढ़ता की चट्टानों पर फेंक कर खंड खंड खंड करती है, फेन बन कर अहं का उन्माद बिखर जाता है और फिर समुद्र का सा स्नेह आदर से हिल्लोलित होने लगता है।

नारायण ने कहा : मलूक! गुरुदेव को आराम करने दे।

मलूक उठ आया।

गुरुदेव ने फिर शांति से आँखें मूंद लीं।

फिर न जाने कहाँ से एक हल्का सा उजाला हुआ। फिर उस उजाले में दो चरण दिखाई दिये। उन चरणों को देख कर तुलसीदास छोटा होने लगा। अब वह फिर आठ वर्ष का हो गया था। उसने सिर ऊपर उठा कर

देखा। वह दृष्टि चरणों से ऊपर उठती हुई जाकर मुख पर टिक गई। अरे! यह तो गुरुदेव नरहरि का मुख था। शांत दिव्य! उस पर कितना गौरव और आत्म विश्वास था।

बालक तुलसीदास ने उन चरणों पर सिर रखकर पूर्ण भक्ति से प्रणाम किया। आलोक की शरण में जैसे कीचड़ में उगने वाला पंकज शतदल कमल बन कर मुखरित हो जाता है, वैसे ही वह गुरु के चरणों में विकस उठा था। गुरु ने कहा था—शतायु भव! आयुष्मान् भव!

'वत्स!' गुरुदेव ने कहा था।

'हाँ गुरुदेव!'

'शूकर क्षेत्र कैसा है?'

'अच्छा है!'

'यही तेरी जन्म भूमि है।'

बालक नहीं बोला।

गुरुदेव ने कहा: यह पवित्र भूमि है वत्स! यह आर्यावर्त्त है। यहाँ पवित्र भागीरथी बहती है। यही पुण्यतोया धारा कलि में पतिततारिणी है। इसे कौन इस पृथ्वी पर लाया था, जानता है?

'नहीं गुरुदेव!'

'तो सुन!' गुरुदेव ने कहा।

बालक ध्यान मग्न सुनने लगा। वे कथा सुना गये। बालक अपने को भूल सा गया था। गुरुदेव कह रहे थे: तब भगीरथ का रथ आगे आगे चलने लगा पीछे पीछे सुरसरि आने लगी और फिर समुद्र में गिरने लगी। इसमें वेद के बाद अखण्ड महिमा है।'

बालक ने कहा: गुरुदेव मैं वेद कब पढ़ूंगा?

नरहरि प्रसन्न हो उठे। बोले: तू अवश्य पढ़ेगा। परन्तु वह काम सहज नहीं। बारह वर्ष में तू पढ़ सकेगा।

'मैं बीस बरस पढ़ूंगा गुरुदेव! मैं सीख तो जाऊंगा न? वेद तो बहुत बड़े होंगे न? मैं छोटा हूँ। मुझ में इतनी अकल है?'

'सब है वत्स! श्रद्धा रख। शास्त्र पर संदेह न कर! तू सब सीख जायेगा।'

बालक विस्मृत सा लग रहा था।

'तूने सूत्र याद कर लिये ?'

'हाँ गुरुदेव !'

'तो ठीक है। जब तू लघु कामुदी समाप्त कर लेगा तुझे मैं आगे पढ़ाऊंगा। उत्तर देश में तो अब काशी के अतिरिक्त मुझे कहीं योग्य ब्राह्मण ही दिखाई नहीं देते। दक्षिण में तो अभी बहुत धर्म है। वहां म्लेच्छों का ऐसा प्रभाव नहीं है। अब भी देव मन्दिरों में वहाँ वेदनिर्घोष होता है। और दिशाओं में ब्राह्मण का जय जयकार होता है।'

बालक ने सुना तो कहा : गुरुदेव ! वहीं क्यों नहीं चलते ?

'वहाँ नहीं वत्स ! फिर यहाँ कौन रहेगा ?'

बालक ने सिर हिलाया। कहा : 'एक बार देख आवें, फिर लौट आयेंगे।'

'ऐसा भी होगा, पर अभी उसका समय आने दे। तू जाकर पाठ याद कर।'

रात का समय था।

'तुलसीदास !' गुरुदेव ने बुलाया।

'हाँ गुरुदेव आज्ञा !'

'बेटा, यह आले में अरण्ड का तेल है, एक चमचा पीले।'

'अच्छा नहीं लगता मुझे।' बालक ने कहा।

'नहीं बेटा। दिन भर पढ़ता है तू। उससे खुश्की बढ़ जाती है न ? तेल पीने से बुद्धि कुशाग्र होती रहेगी क्योंकि खुश्की नहीं रहेगी।'

बालक ने पी लिया, मुँह बनाया। गुरुदेव ने हँस कर उसके सिर पर हाथ फेरा और कहा : बेटा ! तू पढ़ता है न ? ब्राह्मण का काम पढ़ना पढ़ाना, अध्ययन अध्यापन ही है। वही धर्म है। धर्म के लिये कष्ट भी उठाना पड़ता है और यह कष्ट वास्तव में सुख है। उसका निबाहना कष्ट कर लगता इसलिये

है कि कष्ट न होते हुए भी पाप और अधर्म की झूठी झिलमिल में वह डूब जाता है।'

'कलि भी तो है गुरुदेव !' बालक ने सोच कर कहा—'इसमें पाप ही तो बढ़ता है। गुरुदेव ! पहले ब्राह्मणों का बड़ा सम्मान था ?'

गुरुदेव ने लम्बी सांस ली। उस दीर्घ निश्वास में बड़ा दुख था। वृद्ध नरहरि के मुख पर अन्तर्गर्भित महिमा अपने अन्तिम विसर्जन वाले रूप को ही प्रतिभासित कर सकी।

उन्होंने कहा : जानता है बेटा ! यह देश कौन सा है ? मनु ने क्या कहा है ?

'नहीं गुरुदेव !'

'यहीं आदि सभ्यता का केन्द्र था, यहीं से संसार में आलोक फैला था। यहां से निकल कर मेधावियों ने दिशान्तों तक सत्य का शब्द प्रतिध्वनित किया था। बर्बरों, म्लेच्छों को हमारे ही पूर्वजों ने मनुष्य बनाया था। लेकिन आज ?'

गुरुदेव का स्वर कांप गया।

'आज क्या गुरुदेव !' तुलसीदास ने पूछा। उसके मुख पर असीम जिज्ञासा थी।

'आज !' नरहरि ने गम्भीर स्वर से कहा : 'वह सब गौरव खंड खंड हो गया !'

'क्यों ?'

'क्योंकि ब्राह्मण ने अपने को गिरा लिया।'

'कैसे गुरुदेव !'

'वह लोलुप हो गया, उसने अपना चारित्र्य खो दिया। और इसीलिये उसका अधःपतन हो गया। शताब्दियों से जो शासन देता रहा था वह पेट के लिये अपना धर्म बेचने लगा। सर्व नाश हो गया।'

'तो गुरुदेव !' बालक तुलसी ने कहा—'क्या इससे छुटकारा नहीं होगा ? इसका अन्त कब होगा ?'

'जब ब्राह्मण फिर से अपने गौरव को पहचानेगा, जब फिर वह अभयंकर निनाद करके मृत्यु को ललकारने लगेगा। पुत्र ! ब्रह्मा के मुख से उसने जन्म

लिया है। ब्राह्मण जलती हुई अग्नि के समान है, जो भी उसमें हाथ देगा उसे भस्म होना ही पड़ेगा। म्लेच्छों ने सारे जम्बूद्वीप को अपवित्र कर दिया है। उसके शासन में अन्याय और अत्याचार हो रहा है। दरिद्र पीसे जा रहे हैं। लोगों पर कर बढ़ रहे हैं। जोगी, और निर्गुणिये जातिव्यवस्था के विरुद्ध उठ रहे हैं। दक्षिण में लिंगायत वेद का विरोध कर रहे हैं। जानता है यह सब क्यों हो रहा है? क्योंकि देश पर अनाचार का शासन है। हिंदू राजा अपने प्राचीन गौरव को भूल कर कुत्तों की तरह विदेशी के सामने जीभ लटकाए बैठे हैं और पराये हाथों में पड़ कर यह बाज़ अपने ही देश की प्रजा रूपी चिड़ियों का शिकार कर रहे हैं। वे अपने स्वार्थों में पड़कर देश का गौरव भूल गये हैं। वर्णाश्रम टूट रहा है। ब्राह्मण का प्राचीन गौरव इस पृथ्वी के चप्पे चप्पे में फैला हुआ है। जब वे संस्कृत का उच्चारण करते हैं तब शत्रु हिल उठते हैं।

'गुरुदेव!' बालक ने कहा, 'तो फिर वे समझते क्यों नहीं? वे वेद क्यों नहीं पढ़ते?'

'वेद का अधिकार सब को नहीं होता पुत्र।'

'तो!'

'केवल ब्राह्मण और क्षत्रिय ही पढ़ सकते हैं।'

'और वैश्य?'

'वे नहीं।'

'शूद्र?'

'शूद्र का काम सेवा करना है।'

'फिर कैसे होगा गुरुदेव! ब्राह्मण लालची हैं, क्षत्रिय कायर हैं, वैश्य और शूद्रों को अधिकार नहीं, फिर कैसे रक्षा होगी? क्या कोई ऐसी तरकीब नहीं कि धर्म भी बचा रहे और प्रजा भी सब सुन समझ सके। गुरुदेव! आप ऐसा क्यों नहीं करते?'

नरहरि अचकचा गये। बालक क्या कह रहा था। उन्हें गर्व हुआ। लगा कि वे किसी असाधारण प्रतिभा को ढूँढ़ लाये थे। आठ वर्ष का बालक क्या कह उठा था! उसने कितनी बड़ी गुत्थी को कितने बालसुलभ और सहज ढंग

से सुलझा दिया था ! क्या वह जानता था कि वह क्या कहे दे रहा था ? नरहरि सोच नहीं पाये ।

बालक ने डरते-डरते कहा : गुरुदेव !

'क्या है तुलसी ?'

'मैंने अपराध किया है ?' उसने शंकित स्वर से पूछा ।

'नहीं बालक ! अपराध तूने नहीं किया, तू तो मेरे मन को शक्ति दे रहा है । तू मुझे सहारा दे रहा है । बेटा ''बेटा''''

गुरूदेव गद्‌गद् हो गये । उन्होंने तुलसीदास को स्नेह से वक्ष से लगा लिया और उसका माथा सूंघ लिया ।

तुलसी उस स्नेह से विह्वल हो गया । बालक का मन तृप्त होगया । समस्त अभाव जैसे अब सदैव के लिये दूर हो गये ।

बालक तुलसीदास एकांत में खड़ा सोच रहा था । गुरू ने राम की कथा सुनाई थी । जितना ही वह सोचता उतना ही उसका मन पराजित होने लगता । उस पराजय में कितना सुख मिल रहा था !

क्या सचमुच दुनिया में ऐसे आदमी थे । बड़े भाई तो स्वयं भगवान थे । उन्होंने ही तो रावण को मारा था । रावण कितना अत्याचारी था । उसने देवताओं को भी गुलाम बना लिया था । उसके इशारे से हवा चलती थी ? वह माता सीता को पकड़ कर ले गया था धोखे से ! गुरुदेव को यह बात सुनाते समय कितना क्रोध आ गया था !

फिर बालक की कल्पना बढ़ने लगी ।

माता कौसल्या रोई होंगी । और सुमित्रा माता कितनी अच्छी थीं कि उन्होंने लक्ष्मणजी को संग भेज दिया । दोनों भाई माता जानकी के साथ वन वन भटकने लगे । कैसे चले होंगे वे उन कांटों पर !

गुरूदेव तो सुनाते समय रोने लगे थे ।

सारी अयोध्या रोने लगी थी ! केवट से मिलते समय × राम ने उसे हृदय से लगा लिया था । वह भी दुखी हो गया था । परन्तु फिर सुमंत्र मन्त्री लौट आया । पिता तो राम राम कह कर स्वर्ग चले गये ।

उधर वन में कितनी भयानकता थी !!

गुरुदेव कितने आवेश में आगये थे जब उन्होंने बताया था, दण्डकारण्य में खरदूषण और पापी राक्षसों ने ऋषियों को मार मार कर उनकी हड्डियाँ जमा करली थीं । कितने अत्याचारी थे वे लोग । धर्म से रहने वाले भोले भाले ऋषियों को मारते थे । उनके यज्ञकुण्ड में खून लाकर डालते थे । क्या करते बिचारे ।

राम आये । ऋषियों ने शिकायत की । उन्हें ले जाकर वे ऋषियों की हड्डियाँ दिखाई गईं । बस फिर क्या था । राम को क्रोध आया !

कैसा था वह क्रोध !!

गुरुदेव कहते थे कि उनकी भौंए तन गईं । वे बड़े बलवान, बड़े दृढ़ पुरुष थे । आजानबाहु थे । संसार का सारा सौंदर्य उनके स्वरूप में था । उनका सिर उठ गया । उन्होंने प्रतिज्ञा की कि वे राक्षसों का सर्व नाश करेंगे ।

बालक सिहर उठा ।

फिर चित्र खड़े होने लगे ।

राम सो रहे थे । सीता सो रही थीं । लक्ष्मण ने उसके नाक कान काट लिये । वह रोती हुई खरदूषण के पास गई । उन्होंने राम पर हमला किया । राम ने अकेले ही सब को मार गिराया ।

तुलसीदास प्रसन्न हो उठा ।

अच्छा फिर बड़ा मजा हुआ । नाक कान कटा कर सूपनखा गई अपने भाई रावण के पास । उसके थे दस सिर, बीस हाथ । बड़ा अहंकारी था ।

उसके तो सिर पर मौत खेल रही थी । सो कपट रूप धारण कर के, झट मारीच को सुवर्ण मृग बनाया और माता जानकी को हर ले चला ।

× इस अध्याय की रामकथा में तुलसी से पूर्व चली आती वाल्मीकि की रामायण को पृष्ठभूमि के रूप में उपस्थित किया गया है । नरहरि के मुख से कहलाने से उसमें भक्ति का पुट भी है जो अध्यात्म रामायण से लिया गया है ।

पर उधर जटायू झपटा।

वाह! आकाश में उसका रावण से घोर युद्ध हुआ। घोर युद्ध हुआ। पर जटायु बिचारा वृद्ध था। घायल हो गया। गिर गया। रावण सीता को ले ही गया। तुलसी को याद आया। उसने पूछा था : गुरुदेव! फिर!

'फिर? वहीं से तो कथा का उदात्तरूप है वत्स।'

'कैसे गुरूदेव!'

'वहीं से भू-भार उतरना प्रारंभ हुआ।'

'मैं समझा नहीं!'

'पुत्र! इस पृथ्वी पर उस समय रावण ने बड़ा अनाचार फैला रखा था।'

'ओह! कोई धरम न मानता होगा।'

'रावण अपने को देवताओं का स्वामी समझता था। जानता है? परन्तु वह बड़ा विद्वान था। शैव था वह!'

'कौन नहीं होता गुरुदेव! म्लेच्छ क्या बुद्धिमान नहीं है।'

'साधु वत्स! साधु!' गुरुदेव प्रसन्न दिखाई दिये थे।

फिर वे कहने लगे थे।

'बाली बड़ा मदांध था। राम ने उसे मारा।'

'क्यों?'

'सुग्रीव बाली का भाई था न?'

'हाँ।'

'सुग्रीव ने हनुमान के कहने से राम को सहायता देने का वचन दिया।'

'कैसी सहायता?'

'माता जानकी को ढूंढ़ने को।'

'वे तो भगवान थे गुरूदेव! वे क्या नहीं जानते थे?'

'पुत्र तू सन्देह करता है।'

'नहीं करूँगा गुरुदेव!'

'साधु! परन्तु शंका का समाधान होना चाहिये। सुन। वे थे तो भगवान् पर नर रूप में धरती पर आये थे न? इसी से उन्होंने ऐसा रूप धारण किया जैसे सब मानव होते हैं।'

'गुरुदेव ! भगवान कितने अच्छे थे ।'

'पूछता क्या है तुलसी ! राम सा कोई न हुआ, न होगा ।'

'और भी हुए थे गुरुदेव !'

'भगवान के २४ अवतार हैं पुत्र । २३ आ चुके हैं ।'

'२४ वाँ अवतार कब होगा ?'

'जब कलियुग की अति हो जायेगी ।'

फिर गुरूदेव ने कल्कि अवतार की कथा सुनाई । तुलसी अवाक् सुनता रहा ।

'यह सच है गुरुदेव !'

'मूर्ख ! तू बोलना नहीं सीखता !'

'क्षमा प्रभु ! क्षमा ! पर कल्कि का अवतार शीघ्र होना चाहिए प्रभु !'

गुरुदेव ने अविश्वास से देखा था । क्यों ? पर उनके नेत्रों में एक संतोष भी था । वह कैसी उलझन थी ।

तुलसी सोचता रहा, पर उसने उस उलझन का अन्त नहीं पाया । मन और भी भारी हो गया । उसको किसी अज्ञात उलझन ने पकड़ लिया था । वह सोचता रहा, सोचता रहा । और फिर वह एक बारगी हठात् ही सिहर उठा ।

वह तो रामकथा के बारे में सोच रहा था न ?

फिर यह सब क्या हुआ !

हाँ तो गुरुदेव ने कहा था—

'राम ने वचन दिया कि वे सुग्रीव को राज्यसिंहासन पर बिठा देंगे ।'

'फिर ?'

'उन्होंने बाली को मार डाला !'

'पर गुरुदेव ! बाली ने राम का क्या बिगाड़ा था ?'

'वह बड़ा अहंकारी था न ? भगवान का काम ही नीचों को मारना है ।'

तुलसी ने सिर हिलाया था ।

फिर कथा चलने लगी थी ।

वह कैसे मजे की बात थी जब वन्दरों ने पुल बनाया था समुद्र पर । एक पत्थर लेकर चलता था, दूसरा पेड़ उखाड़ लाता था । नलनील पुल बना रहे थे ।

और तुलसी की कल्पना सजग होगई ।

समुद्र बड़ा विशाल होता है। कितना बड़ा होता है। गंगा से बड़ा। गंगा से बहुत बड़ा। बहुत बड़ा। दस गुना बड़ा, नहीं सौ गुना बड़ा। उसमें बड़े-बड़े मगर रहते हैं। पानी उछलता रहता है, नीला, काला; लहरें उठती हैं, पीपल से भी ऊँची-ऊँची लहरें! उफ! उस पर पुल बाँधा था!!

तुलसी श्रद्धावनत हो गया।

और फिर कुछ याद नहीं सा आया। युद्ध बुद्ध तो यों ही निकल गये। केवल अग्नि प्रवेश करती सीता ही याद आई।

लंका की भस्म में से उठता धुंआ तुलसी को चारों ओर छाया हुआ लगा।

सोचते सोचते तुलसी सो गया।

वह स्वप्न देखने लगा।

एक व्यक्ति खड़ा था।

तुलसी ने पूछा : तुम कौन हो?

उत्तर मिला : मैं हनुमान हूँ।

'अच्छा तुम हनुमान हो!'

'क्यों?'

'मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।'

'चिरंजीव रहो।'

'तुम ही तो चिरंजीव हो!'

'मैं पहले ऐसा न था।'

'फिर कैसे हो गये?'

'मुझे राम कृपा ने ऐसा बना दिया।'

'क्यों न हो, वे तो भगवान ही जो ठहरे?'

'तुम जानते हो!'

'क्यों? ब्राह्मण का बेटा इतना भी नहीं जानेगा?'

'अच्छा तुम ब्राह्मण हो। तब तो मैं तुम्हें प्रणाम करूंगा।'

'अरे नहीं, नहीं, तुम तो देवता हो!!'

'ब्राह्मण पृथ्वी के देवता होते हैं न!'

'नहीं, नहीं····

वह चिल्लाया, पर आवाज गले में घट गई।

'तुलसी ! बेटा तुलसी !' गुरुदेव ने हिलाकर जगा दिया।

'कौन ? गुरुदेव !' तुलसी उठ बैठा।

'हाँ बेटा। क्या हुआ ? क्यों चिल्लाता था !!'

'गुरुदेव !' वह उनसे चिपट गया।

'क्या हुआ बेटा ?'

'गुरुदेव ! मैंने, मैंने···'

'घबरा नहीं बेटा। धीरज धर !'

'गुरुदेव मैंने सुपने में हनुमानजी को देखा था।'

गुरुदेव के नेत्रों में करुणा झलक आई। प्रसन्नता भी थी।

'आप नहीं मानते ?' तुलसी ने पूछा था।

'क्यों नहीं मानूंगा ?' उन्होंने कहा—'अवश्य देखा होगा वत्स। अवश्य देखा होगा। भगवान तो भक्तों पर दया करते हैं।'

'पर भगवान तो नहीं दिखे प्रभु !!'

'वे राजा हैं, क्या तू उनके दरबार तक, सहज पहुँच सकता है ? देवताओं का देवता इन्द्र भी वहाँ कठिनाई से ही पहुँच पाता है।'

'बहुत बड़े राजा हैं वे गुरुदेव ?'

'बहुत बड़े हैं। उनसे बड़ा तो कोई है ही नहीं तुलसी !'

'लोग कहते हैं शिवजी बड़े हैं।'

'वे दोनों ही भगवान हैं बेटा। शिव और राम एक ही हैं। वे तपस्वी के रूप में शिव हैं और लोकोद्धारक जगत् के नायक के रूप में राम हैं। राम ही सबसे बड़े हैं।'

'गुरुदेव ! क्या मैं राम तक कभी नहीं पहुंचूँगा ?'

'जरूर पहुँचेगा।'

'कैसे बाबा ?'

'भक्ति से।'

'भक्ति क्या बाबा ?'

'तू जानता है तू उनका कौन है ?'

'जब वे इतने बड़े महाराजा हैं तो मैं क्या होऊँगा गुरूदेव ! मैं तो उनके नौकर का भी नौकर नहीं हूँ ।'

गुरुदेव प्रसन्न हो उठे । कहा : बेटा ! वे ही उद्धारक हैं, वे ही ब्रह्म हैं ।

'ब्रह्म क्या बाबा ?'

'ब्रह्म ही परमात्मा है ।'

'परमात्मा ! राम ही तो है न ?'

'हाँ, वही हैं ।'

'मैं उनका भक्त बनूँगा गुरुदेव !'

नरहरि उद्विग्न से उठ खड़े हुए और मन को शांत करने के लिये कुछ मंत्र पाठ करने लगे । वह उस समय अत्यन्त तन्मय थे ।

तुलसी फिर सो गया ।

भोर हो गई थी । तुलसी जगा । उसने पड़े पड़े देखा । गुरुदेव पूजा कर रहे थे । उनके कण्ठ से सस्वर श्लोक निकल रहे थे, वे ही जो तुलसी को उन्होंने रटा दिये थे । तुलसी को वे बड़े अच्छे लगते थे । वह ध्यान से सुनने लगा था -

भजेऽहं सदा राममिन्दीवराभं
भवारण्यदावानलाभाभिधानम्
भवानी हृदा भावितानन्दरूपम्
भवाभावहेतुं भवादिप्रपन्नम् ।
सुरानीकदुःखौघनाशैक हेतुं
नराकारदेहं निराकारमीड्यम्
परेशं परानन्दरूपं वरेण्यं
हरिं राममीशं भजे भारनाशम् ।
प्रपन्नाखिलानंददोहं प्रपन्नं
प्रपन्नार्तिनिःशेषनाशाभिधानम्

तपोयोगयोगीश भावाभिभाव्यं
कपीशादिमित्रं भजे राममित्रम् ॥

तुलसी सुनता रहा। ध्यानस्थ सा। अभी वह उसका अर्थ ठीक से समझता नहीं था, किंतु फिर भी सुनने को बहुत अच्छा लगता था। क्या वह भी कभी ऐसे ही गा सकेगा? क्या वह भी कभी ऐसे ही श्लोक बना सकेगा? वह सोचने लगा।

गुरु ने अन्तिम श्लोक गाया—

लसच्चन्द्रकोटि प्रकाशादिपीठे
समासीनमङ्के समाधायसीताम्
स्फुरद्हेमवर्णां तडित्पुञ्जभासां
भजे रामचन्द्रनिवृत्तार्त्तितन्द्रम्।

नरहरि ने भगवान को दण्डवत की। तुलसीदास उठ कर बैठ गया। उसने देखा। गुरुदेव कुछ प्रार्थना कर रहे थे। उसने ध्यान से सुना। शब्द गूंजे: प्रभु! इस कलि का नाश करो। वेदोद्धार करो। फिर अवतार लो प्रभु! प्रजा वर्णाश्रम छोड़कर व्याकुल हो रही है। इसे म्लेच्छों से बचाओ।

असह्य वेदना से जैसे वे उत्तप्त हो गये थे। वे उठे।

तुलसी ने उठ कर इनके पाँवों पर सिर रखकर कहा: गुरुदेव! गुरुदेव!!

'क्या है वत्स!?' वे चौंक उठे।

'मुझे आज्ञा दीजिये गुरुदेव! मैं कलि से लड़ूंगा गुरुदेव!!'

'तुलसीदास!' गुरुदेव ने काँपते कण्ठ से कहा और आकाश की ओर देख कर वे जैसे किसी शून्य से बातें करने लगे—'यह तेरी ही इच्छा है लीलाधर! मुझसे जो किसी ने नहीं कहा, वह यह बालक कह रहा है! क्या यही सत्य है अन्तर्यामी!'

फिर हठात् वे मुड़े। कहा: तुलसीदास!

उनका स्वर दृढ़ था, उन्नत था।

'गुरुदेव!!' तुलसी ने पूछा।

'उठ वत्स! चल!'

'कहाँ गुरुदेव!!'

'काशी ।'

तुलसी देखने लगा जैसे क्यों ?

'वहाँ आचार्य्य शेष सनातन हैं। प्रकाण्ड पंडित हैं वे । उनका तुझे शिष्य बनवाऊंगा । वे तुझे देवभाषा पढ़ायेंगे और फिर तू वेदवेदांत में पारंगत होगा। पुत्र चल उठ !'

'चलो' तुलसी ने कहा और आनन्द से दो पग आगे बढ़ आया ।

फिर एक लम्बी यात्रा प्रारम्भ हुई। पथ के कष्ट अनेक थे । पर वे सब याद नहीं रहे । शेष सनातन के मुख पर असीम पाण्डित्य झलकता था । गुरुदेव नरहरि आश्वासन और आशीर्वाद देकर चले गये । तुलसीदास रोया था, ऐसे लगा था जैसे वह उस दारुण वेदना को सह नहीं सकेगा । परन्तु अष्टाध्यायी खुली, फिर काव्य खुले, नाटक खुले, चंपू पढ़े, पुराणों को पढ़ डाला, फिर दर्शनों का अध्ययन किया, महाभारत पढ़ी, फिर वेदों और उपनिषदों का गम्भीर अध्ययन हुआ, यहाँ तक कि जो कुछ आचार्य्य के पास था, वह सब तुलसी ने पा लिया ।

जिस दिन गुरु ने कहा : 'वत्स ! तू पूर्ण पण्डित हुआ'; तुलसी ने शेष सनातन के चरणों पर सिर रखकर प्रणाम किया ।

'गुरुदेव !' उसने गम्भीर स्वर से कहा : 'आपने इस पशु को मनुष्य बना दिया है । गुरुदेव अपने विनीत शिष्य से गुरु दक्षिणा माँगिये ।'

शेष सनातन अपनी वृद्ध आँखों से देखते हुए कुछ मुस्कराये । कहा : वत्स !

'गुरुदेव !!'

'तू गुरुदक्षिणा देना चाहता है तो वचन दे ।'

'आज्ञा गुरुदेव !!'

'जो शिक्षा मैंने दी है उससे ब्राह्मण की मर्य्यादा बढ़ायेगा । धन के लिये लोलुप नहीं होगा ?'

'वचन देता हूं । और कहें ।'

'और एक ही बात है वत्स ! तू भगवान रामचन्द्र में सदैव अटूट भक्ति और श्रद्धा रखेगा ?'

'गुरूदेव ! यह आपकी बात नहीं है। यह तो मेरी ही बात है। सोते जागते इतने वर्षों तक जिन दोनों भाईयों ने मेरी रक्षा की है, वे तो मेरे भगवान हैं। बारह वर्ष बीत गये हैं ! जब मैं आया था तब आठ वर्ष का था। आज मैं बीस का हूं। आपने मुझे कभी व्याकुल नहीं होने दिया। अपनी आज्ञा कहें गुरुदेव !'

'तो जा वत्स !' गुरूदेव ने कहा—'गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर !'

'गुरूदेव !!' तुलसी ने आहतस्वर से कहा।

'क्यों ?' वे सांत्वना देते बोल उठे।

'फिर राम की सेवा कैसे होगी ?'

'राम ने लोक का उद्धार ही गृहस्थ बन कर किया था !!'

तुलसी निरुत्तर हो गया।

गुरू ने फिर कहा : 'याद है न ?'

'क्या गुरूदेव !'

'मृत्यु के बाद से तेरे पिता का एक ही श्राद्ध हुआ जो उनके संबंधियों ने किया था। तेरी माता को भी कोई पानी देने वाला नहीं। तू जा और आज ही गंगा में खड़े होकर श्राद्ध कर।'

तुलसी सिहर उठा। कहा : करूँगा देव !

'फिर क्या करेगा ?'

'घर लौट जाऊँगा।'

'शूकरक्षेत्र ?'

'नहीं गुरूदेव ! राजापुर।'

'वहाँ तेरा कौन है ?'

'कोई नहीं है। वहीं मुझे गुरू मिले थे। वहीं जाकर पहले उस मन्दिर में भगवान के दर्शन करूँगा जहाँ गुरु ने मुझे उठाया था। और गुरु का महान कार्य्य वहीं से प्रारम्भ भी करूँगा।'

'कल्याण हो वत्स !'

तुलसी ने फिर वंदना की।

'सुन!' उन्होंने कहा—'वर्णाश्रम का पालन करना ही धर्म है वत्स! यह जो पंथ हैं वे सब अनाचार फैलाते हैं। तू प्रतिभावान है, भविष्य तेरे सामने पड़ा है। तू तो मुझे लगता है काव्य रचता है?'

'कहाँ गुरुदेव! मुझमें इतनी योग्यता कहाँ।' तुलसीदास ने झिझक कर कुछ संकोच से कहा।

'पागल! सोलह बरस के बाद तो पुत्र भी मित्र के समान हो जाता है। फिर तू तो अब काशी के विद्वानों से स्वीकृत विद्वान है। संकोच कैसा। मुझे सुना। बैठ जा!'

तुलसी बैठ गया।

'सुना वत्स!' गुरू ने आग्रह किया।

तुलसी ने सुनाया :

राम वाम दिसि जानकी
लखन दाहिनी ओर।
ध्यान सकल कल्यान मय
सुरतरु तुलसी तोर॥
सीता लषनु समेत प्रभु,
सोहत तुलसीदास
हरषत सुर, बरषत सुमन
सगुन सुमंगल बास।

'साधु! साधु!!' आचार्य्य शेष सनातन ने कहा—'भाषा में कहा है? ब्राह्मण होकर देव वाणी में भी कह!'

'गुरुदेव!' तुलसी ने कहा : 'संस्कृत प्रजा समझती नहीं।'

'उससे क्या हुआ?'

'देव वे आनन्द नहीं पाते।'

'सो तो है।'

'मैंने स्तुति संस्कृत में लिखी है।'

'उसे सुना। उसे सुना!'

तुलसी ने सुनाया:

नमामि भक्त वत्सलं, कृपालु शील कोमलं
भजामि ते पदाम्बुजं अकामिनाँ स्वधामदम्
निकाम श्यामसुंदरं भवाम्बुनाथ मन्दरं
प्रफुल्ल कञ्ज लोचनं मदादिदोषमोचनं ।

शेष सनातन झूमने लगे । तुलसी ने फिर गाया :

प्रलम्ब बाहु विक्रमं प्रभोऽप्रमेयवैभवं
निषङ्गचापसायकं धरं त्रिलोकनायकम्
दिनेश वंश मण्डनं महेशचापखण्डनं
मुनीन्द्र सन्त रञ्जनं सुरारिवृन्दभञ्जनम् ।

शेष सनातन ने प्रसन्न होकर आशीष दी । परंतु तुलसीदास के मन में संदेह था । यह श्लोक केवल पण्डितजन ही समझ सकते थे । प्रजा कैसे समझ सकेगी यह उसके सामने एक प्रश्न आ खड़ा होता था । परंतु आचार्य उतने में ही विभोर हो गये थे । तुलसी को चुप देख कर बोले : हूँ । और ?

तुलसी आगे सुनाने लगा ।

शेष सनातन ने कहा : अहा ! कैसी मधुर भाषा है ?

तुलसी ने कहा : देवभाषा यही है गुरुदेव ! आपने ही सिखाया है, परंतु प्रजा अंधकार में डूब रही है । इसका कैसे उद्धार होगा ।

वत्स ! वे स्वयं करेंगे । वे भगवान हैं । यह धर्म उन्हीं का है । यह भूमि भी उन्हीं की है । वही सब कुछ करते हैं । अपने अंदर अहं मत रख । हम तुम तो निमित्त हैं निमित्त ।

तुलसी इस बात पर श्रद्धा से निमित हो गया था ।

वृद्ध तुलसीदास ने आँखें खोलकर पुकारा : मलूक !

'गुरुदेव !' वह भीतर आया । 'आज्ञा ।'

'प्यास लगी है।'

वह गंगाजल लाया। वृद्ध कवि ने उठ कर पिया और फिर लेट गये।

'अब कैसी तबियत है?'

'अब तो बिल्कुल ठीक हो जायेगी।'

वह समझ गया। चुप हो रहा।

'नारायण कहाँ है?'

'गुरुदेव! वह बाहर है।'

'क्या कर रहा है वहाँ?'

'बहुत से लोग आ जारहे हैं। उन्हें आपका हाल बताने को वह बाहर ही बैठ गया है।'

'अरे तुमने कुछ खाया या नहीं?'

'खालेंगे गुरुदेव!' उसने टाला।

'कब खा लेगा!' वृद्ध ने कहा—'मैं बूढ़ा हूँ। क्या मेरे लिये भी किसी का दुख करना अच्छा लगता है! जा बेटा तुझे सौगंध है, तू जाकर खा आ। उस पागल को भी लेजा।'

वृद्ध का स्वर गद्गद् हो गया। उन्होंने कहा: गरीब निवाज! तुम सच-मुच बड़े करुण और मायावी हो। चलती बेला में यह स्नेह के बंधन क्यों बाँध रहे हो! यह तो बालक हैं। इन्हें इतना दुःख क्यों दे रहे हो?

'बाबा! बाबा!' मलूक ने भर्राये स्वर से कहा—'मैं खा लूंगा! रोओ नहीं बाबा!'

'बेटा! मैं रोता नहीं। मैं तो इस प्रेम से हार जाता हूँ, यह कितना सुन्दर लगता है। मलूक!'

'गुरुदेव!' जैसे वह फिर सँभल गया था।

'यह संसार विचित्र है।'

वह चुप रहा।

'इसमें बड़ी माया है। है न?'

'हाँ गुरुदेव!'

'और वह बाँधती है तो मन को ऐसा कर देती है कि वह उससे सहज ही

छूट नहीं पाता। बड़ी तृष्णा है यह। इसका कोई अन्त नहीं दिखाई देता। जिस पर राम की कृपा होती है वही इससे बच सकता है। जानता है वेद, पुराण, और शास्त्रों में जो धर्म है वह अकेला काफी नहीं है। वह तो समाज और संसार में धर्म स्थापना के लिये आवश्यक है। वह तो बाह्य पक्ष है। परन्तु व्यक्तिपक्ष में तो भगवान की कृपा ही सब कुछ है। बेटा! ब्राह्मण होना पूर्व जन्म का पुण्यफल है, और यज्ञ, दान, तप भी धर्म हैं। अपने-अपने वर्ण के अनुसार काम करना ही वेद का बताया मार्ग है। परन्तु व्यक्ति के लिये रामनाम ही सर्व श्रेष्ठ है। भगवान मनुष्यमात्र के लिये हैं। वे सब पर दया करते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि भगवान के सामने सब समान हैं तो धर्म भी समान है। मर्यादा ही से संसार नियमित रूप से चलता है। मर्यादा के लिये ही नारायण ने रामरूप धारण किया था। अपने अपने वर्ण में रह कर भी भगवान की अटूट श्रद्धा और भक्ति से व्यक्ति का जन्म सुधर जाता है। वह तो नीचों का भी उद्धार करता है मलूक!'

मलूक ने देखा। वृद्ध कवि के नेत्रों में उस समय भी एक स्वप्न सा था जैसे वे बहुत सुदूर की बात सोच रहे थे। वे कह उठे—भगवान! कब आयेगा वह दिन? मलूक!

'गुरुदेव!'

'बैठ जा वत्स! बैठ जा!'

वह बैठ गया।

'बेटा!'

'गुरूदेव!'

'गा तो। मेरी विनय के पद तो मुझे सुना। मैं बार बार राम का ही नाम सुनना चाहता हूँ।'

मलूक ने नयन पोंछ लिये और गाया—

जैसो हौं तैसो हौं राम!
रावरो जन जनि परिहरिए,
कृपासिंधु कोसलधनी सरनागत-पालक,
ढरनि आपनी ढरिए॥

हौं तो बिगराचल ओर को,
बिगरी न बिगारिए,
तुम सुधारि आए सदा सबकी सबविधि,
अब मेरीयो सुधरिए ॥
जग हंसिहैं मेरे संग्रहे,
कत ऐहि डर डरिए ?
कपि केवट कीन्हें सखा जेहि सील सरल चित
तहि सुभाव अनुसरिए
अपराधी तउ आपनो
तुलसीन बिसरिए ।
टूटियौ बाँह गरे परे, फूटेहूँ बिलोचन
पीर होति हित करिए ।

वे ध्यान विभोर से सुन रहे थे।

मलूक ने फिर आर्द्र कण्ठ से गाया —

तुम तजि हौं कासों कहौं
और को हितु मेरे ?
दीनबंधु सेवक सखा, आरत अनाथ पर
सहज छोह्नु केहि फेरे ?
बहुत पतित भवनिधि तरे
बिनु तरि बिनु बेरे
कृपा, कोप, सति भाव हूँ धोखेहुं,
तिरछेहुँ राम तिहारेहि हेरे ।
जौं चितवनि सोंधी लगै ।
चितइए सबेरे,
तुलसीदास अपनाए कीजै न ढील
अब जीवन अवधि अति नेरे ।

मलूक रुक गया। वृद्ध कवि ने कुछ देर बाद कहा : वत्स ! विनयपत्रिका पूरी नहीं हुई।

'बाबा आपने सब तो प्रभु को सुना दिया ? कहा ही है—

दशरथ के समरथ तुही
त्रिभुवन जसगायो
तुलसी नमत अवलोकिए बलि बांह बोल
दै बिरदावली बुलायो

'नहीं वत्स ! अभी मन नहीं भरा । मैं बोलता हूँ तू लिख ।'

वह लिखने लगा । और कवि आँखें मींच कर धीरे धीरे गाने लगे—

राम राय बिनु रावरे
मेरे को हितु साँचो !
स्वामि सहित सब सों कहौं सुनि गुनि बिसेषि
कोउ रेख दूसरी खाँचो ॥
देह जीव जोग के
सखा मृषा टाँचन टाँचो
किए बिचार सार कदली ज्यों मनि कनक संग लघु
लसत बीच बिच काँचो ॥
विनय पत्रिका दीन की,
बापु ! आपु बाँचो
हिये हेरि तुलसी लिखी सो सुभाय सही
करि बहुरि पूछिए पाँचो ॥

वे फिर ध्यान में डूब गये । मलूक ने देखा । विनयपत्रिका में एक पद बढ़ गया था ! वह उसे सुनाने बाहर ले गया । कुछ ही देर में काशी में उस गीत की असंख्य प्रतियाँ नकल होकर फैल गईं और मंदिरों में लोग गाने लग गये ।

और वृद्ध कवि के नयनों में फिर से अतीत घूमने लगा, जाग्रत होकर, नई चेतना से भरा हुआ । स्मृतियों के बोझल पंख फैला कर मन का भ्रमर अतीत के फूल पर फिर मँडराने लगा ।

एक भव्य आलोक आकाश में तिरोहित हो गया । राजापुर में सांझ हो गई । मंदिर में दीप जलने लगे ।

एक तरुण ब्राह्मण आया। उसको देख कर सबने सम्मान किया क्योंकि वह महापण्डित था।

'अरे!' एक ने कहा—'यह तो, यह तो.........'

'हाँ!' तरुण ने गंभीर स्वर से कहा: 'मैं वही तुलसीदास हूँ और आचार्य्य स्वामी नरहरि तथा आचार्य्य शेष सनातन की आज्ञा से पुनः राजापुर लौट आया हूँ, धर्म जगाने के लिये।'

धर्म ???

कैसा धर्म !!!

सैकड़ों नर नारी बैठ जाते। तुलसीदास राम की पवित्र कथा सुनाया करता। लोग रोते, हँसते, झूमते। तुलसी का स्वर बड़ा कोमल था।

कथा जब समाप्त हुई भेंट चढ़ने लगी। वह तुलसी का संबल हुआ।

दूसरे दिन से राजापुर में धूम मच गई। लोगों में चर्चा चल पड़ी।

'वह मनुष्य नहीं, पृथ्वी का देवता लगता है।'

'कितना ज्ञान है उसमें!'

'वेद, पुराण, सब जीभ पर रखे हैं भइया।'

'भला बताओ!! कैसी संस्कृत फटाफट बोल जाता है। हमारे यहाँ भी बड़े पंडित हैं। पर किसी की हिम्मत नहीं हुई कि सामने आ जाता।'

'आजाता तो कल वह बराबर भी कर देता। कैसा तरुण है!'

पनघट पर भी बात हुई।

'मैया री मैया! शेर का सा दहाड़ता है!'

'ब्राह्मण है ब्राह्मण!' एक किशोरी ने कहा।

'रत्ना !' एक स्त्री ने कहा : 'तू कब लौटी थी रात कल ! मैं तो आधी कथा में उठ आई थी।'

'पूरी कथा सुनी हमने तो। मुझे तो एक और बात भाती है।'

'वह क्या ?'

'मुझे तो वे कवि लगते हैं।'

'तुझे कैसे खबर ?'

'जब मैं ही कविता बना लेती हूँ चाची, तो उनको क्या कठिन पड़ेगा। तुमने देखा नहीं ? कथा सुनाते सुनाते कभी कभी भाषा के पद सुनाने लगते हैं। कल कितने सुन्दर बरवै सुनाए थे—

केस-मुकुति सखि मरकत मनिमय होत
हाथ लेत पुनि मुकुता करत उदोत।

फिर वह कूएं में पानी खींचती हुई अपने आप धीरे धीरे गुनगुनाने लगी।

चंपक हरवा अङ्ग मिलि अधिक सोहाइ
जानि परै सिय हियरे जब कुम्हिलाइ।

फिर रात हुई।

भीड़ दुगनी हो गई थी।

तुलसी का नाम फैलने लगा।

वह धारासार शब्दों की पांति लगा देता और रामायण सुनाता। बीच बीच में हिंदी के पद जोड़ता। लोगों को आनन्द आता। जिन बातों को धर्म धुरंधर लोग कहते न अघाते, परंतु लोग नहीं सुनते थे, तुलसी सुनाता तो चारों ओर सन्नाटा छा जाता। वह लोक में वेद, ब्राह्मण, गौ, और धर्म के पुनरुद्धार की बात सुनाता और राम का रक्षक स्वरूप हृदयों में भरता हुआ अतीत के गौरव की बात कहता। ब्राह्मण प्रसन्न होते। लोग कहते। यह तो कोई साधारण विद्वान नहीं !

'वह तो वैशम्पायन है।'

'कलियुग में ब्राह्मण ज्योति है।'

ब्राह्मण प्रसन्न हो उठे। भीड़ें आतीं और राम का नाम सुनकर चली जातीं, फिर आतीं और फिर सुनतीं। भेंट अब अधिक मिलने लगी। स्त्रियों के लिए अधिक आनन्द का विषय हो गया। वह सुन्दर भी था। युवक था।

एक वृद्धा ने पूछा : पण्डित विवाह हुआ ?

तुलसी ने कहा : नहीं माता।

'क्यों नहीं किया ?'

'दरिद्र ब्राह्मण हूँ।'

'ब्राह्मण का धन तो विद्या है बेटा! वही धन तो सबसे बड़ा धन है।'

तुलसी चुप हो गया पर बात मन में चुभ गई।

आज वह कथा सुना रहा था। हठात् एक बारगी ही उसके नेत्र ठिठक गये। वह संभल गया। फिर कथा सुनाने लगा। उसे लगा उसका कण्ठ अब अपने आप अधिक सुरीला हो गया था। श्रोता मंत्रमुग्ध बैठे थे।

तुलसीदास ने कथा कहते कहते फिर सिर घुमाया। फिर उसका मन जैसे सुलग उठा ? वहीं, वहीं।

नेत्र फिर हट गये।

परंतु तीसरी बार देखा तो वही विभोर तन्मयता। वहाँ तो अहंकार को तिरोहित करके मूर्तिमती श्रद्धा बैठी थी। उस आत्म समर्पण में कितनी पवित्रता थी!

खिंची हुई भवें, उनींदे से नेत्र जो शायद कल्पना से बोझिल हुई पलकों को हटा कर ध्वनि को आत्मसात कर लेना चाहते थे।

कथा समाप्त हो गई।

लोग भेंट देने आने लगे।

वह आई।

उसने केवल एक फूल चढ़ा दिया।

तुलसीदास ने उस फूल को उठा कर राम के चरणों में अर्पित करके अपने सिर में लगा लिया। रत्ना ने देखा। आँखों में विभ्रम कांपा। होठों पर गर्व की मुस्कान ने यौवन और रूप की रक्षा में परदेसी आँखों के सामने बलैंया ली। और फिर कपोलों पर रक्तिम लाज ने पृष्ठ बदला, तुलसी को लगा जैसे अनेक सर्ग, अनेक काण्ड उस निमिषमात्र में निकल गये। वह गोरी ब्राह्मण कन्या, उसके माथे पर भास्वर प्रतिभा और फिर उसकी वंदना में कल्याणी गरिमा उठी और तब तुलसीदास के रोम रोम में एक स्फुरण हुआ जो श्रद्धा के कंधों पर सिर रखकर मानों अपने आप को भूल गया।

रत्ना आई। चली गई। केवल एक बार उसने मुड़कर व्याकुल शकुंतला की भांति देखा, फिर लगा जैसे कमलों की सृष्टि हुई और फिर वे कमल शत-दल होकर चितवन के सहारे से झूमने लगे।

तुलसीदास का मन भ्रमर की भांति उड़ चलने के लिये व्याकुल हो उठा।

एकांत रात्रि में तुलसीदास शैय्या पर लेटा था।

बसंत की सी मीठी बयार चल रही थी। आकाश में असंख्य नक्षत्र झिल-मिला रहे थे। निशा सुन्दरी झिल्लियों के मिस धीरे धीरे अपनी नूपुर ध्वनि गुंजित कर रही थी। आकाश गंगा पर एक मादक तन्द्रा सी छाई हुई थी। तुलसी को लगा वह सारी रात एक सुन्दरी तरुणी थी।

उसकी देही तो चाँदनी थी, और कमल उसके नेत्र थे। मुख चन्दा से भी सुन्दर था और वे खिंची हुई भौंहें जब याद आईं तो मन ऊर्ध्वगति पाँखीसा अनन्त आकाश के नील में फड़फड़ाने लगा। दूर तक केवल प्रतिध्वनि होती हुई वही झंकार सुनाई दी।

तुलसी उठ खड़ा हुआ। उसने भीतर जाकर वह फूल उठा लिया। उसे आँखों पर फेरा, फिर अनजाने ही होठों ने उस सुकुमार फूल को चूम लिया। कवि को लगा जैसे वही मुख अब बंकिम नयनों से देख रहा था।

नहीं, वह यहाँ नहीं थी! यह तो उसकी स्मृति थी! कितनी कोमल, कितनी कवित्व भरी, किंतु कितनी जीवित और तुलसी को लगा कि उस अंधकार में फिर सृष्टि में व्यापती जा रही है, तन्मया, विमोहिनी, अपराजिता, माधुर्य्य श्री, सौम्यमंगला, चिरंतन रूप से मनोहारिणी, नारी, आलोकिनी, मूर्तिमती रूपशिखा !!

अंधकार सिहर उठा।

तुलसीदास ने फूल रख दिया। वह शैय्या पर आकर फिर लेट गया। सो गया।

स्वप्न में कोई समीप आ गया।

कौन था !!

वही तो थी !!

कवि ने कहा : आओ सुन्दरी !

परंतु सुन्दरी बोली नहीं। उसका वह अवाक् इंगित कितना बड़ा आवाहन था। तुलसी ने हाथ बढ़ाया.........

आँख खुल गई। अंधेरा मुस्करा दिया। तुलसी ने कहा : प्रभु ! आज प्रार्थना करता हूँ। मुझे वही दे, मुझे वही दे,.........

वायु हँसी, तारे हँसे, रात खिलखिलाई, और फिर वह सो नहीं सका... क्योंकि वह अकेला नहीं था, मन में कोई आ गया था, जो सता रहा था, सुपनों की गहरी लहरों में भी जो अपने रूप की पतवारें खेता, अपनी तन्मयता की नौका को ले आता था, उसे भय नहीं लगता था.........वह सारा समुद्र बना था। तुलसी का प्यार, तुलसी का प्यार था वह......

आज तुलसी का हृदय आकुल था। वह कथा सुना रहा था, परन्तु बार बार नेत्र व्याकुल से चारों ओर घूम जाते थे। वह नहीं दिख रही थी। हृदय बार बार काँप उठता था। अंत तक वह देखता रहा, कहीं भी नेत्र टिके नहीं, लहरों की तरह दृष्टि बढ़ी और अपरिचित मुखों की चट्टानों से टकरा टकरा कर लौट गई। वह निराश हो उठा।

कथा समाप्त हो गई। भेंट चढ़ने लगी।

हठात् फिर किसी ने धीरे से एक फूल चढ़ाया।

तुलसी ने कहा : तू आ गया। सब की भेंट भगवान के चरण छूकर मेरे पास लौट आती है, केवल तू ही देवता पर चढ़ता है, पर मैं तुझे नहीं ले पाता।

रत्ना ने एक बार आँखें उठा कर देखा और मुस्करा दी।

वहाँ भीड़ थी। इंगित किया।

एक ओर चली गई।

तुलसी धीरे से उठा और वहीं गया।

'कौन हो तुम ?'

'रत्ना।'

'कौन जाति हो ?'

'ब्राह्मण !'

'ब्राह्मण !!' तुलसी उच्छ्वसित हो उठा।

'कहाँ रहती हो ?'

'क्या करेंगे जानकर !'

तुलसी का मुँह बंद। क्या कहे ?

रत्ना मुस्कराई। कहा : 'पिता के पास आयेंगे न ?'

'क्यों ?'

अबकी बार रत्ना सकपकाई। बंकिम दृष्टि से देखा और खड़ी रह गई।

तुलसी ने देखा तो कहा : आऊंगा। कल।

उसने पता बताया। चली गई। और कोई बात नहीं हुई। परन्तु इतिहास खुल गये। क्या बचा था कहने को!

कैसा मिलन था यह! मर्यादा ने दोनों को जकड़ रखा था। वह तो गरिमा से आवृत्त थी। सब कह गई, पर कहा कुछ भी नहीं। तुलसी को पसीना आ गया। उसे लगा वह उड़ रहा है।

उसने धीरे से कहा : कल। आऊंगा।

रात आई। ऐसी बीत गई जैसे कभी नहीं आई। वह जैसा छोटासा व्यवधान था। उसका अनुभव भी नहीं हुआ। तुलसी को याद ही कहाँ था। उसे तो याद आ रहा था : पिता के पास आयेंगे न?

क्यों?

कोई उत्तर नहीं।

'मेरे पास कुछ नहीं है।' तुलसी ने कहा था।

वृद्ध ने देखा और कहा था : 'क्या नहीं है?'

'धन।'

'धन! ब्राह्मण को धन से क्या करना है तुलसीदास! दोनों बेला पेट भरने को अन्न भगवान दे दे, वही धन है। और अभी इतना कलियुग नहीं है कि वह भी नहीं मिलता हो।'

रत्ना के पिता की बात सुनकर तुलसी का सिर झुक गया।

'तुम प्राचीन वैदिक रीति से मेरे पास कन्या माँगने आये हो तुलसीदास। आत्माराम दुबे को कौन नहीं जानता था। मैं सब सुन चुका हूँ। स्वामी नरिहरि और आचार्य शेष सनातन ने तुम्हें पढ़ाया है। राजापुर तुम्हारा नाम ले

रहा है। रत्ना के लिये तुम सा अच्छा वर मुझे कहां मिलेगा ? मैं अवश्य तुम्हें ही कन्यादान दूंगा। वृद्ध रुका, फिर कहा—'मेरी बेटी भोगविलास की दासी नहीं है, वह अपनी माता के समान ही धर्म परायणा ही है। उसका मन बड़ा सरल और बड़ा ही स्वाभिमानी है। मुझे वह बहुत ही प्रिय है। तुम कवि हो, वह भी कविता करती है। ब्राह्मणों के घर में जैसे विद्या की ही चर्चा चलनी चाहिये, वैसी वह बुद्धिमती है, जो उसी मर्यादा का निर्वाह कर सकेगी। संकोच न करो वत्स। धन क्या होता है ?'

भीतर से एक बालक आया। रत्ना का छोटा भाई था, बोला—दादा ! दादी अम्मा ने बुलाया है।

'आता हूं बेटा !'

वृद्ध भीतर चला गया। बालक भी चला गया। भीतर से हँसती हुई नाइन आई। बोली : पालागन पण्डित जी !

'जीती रहो !' तुलसी ने कहा।

नाइन ने घूंघट में से देखते हुए कहा : पण्डित जी ! तुम्हें खबर कैसे लगी कि हमारे यहाँ एक अनब्याही लड़की है ?

तुलसीदास सकपका गया। भीतर लड़कियों के हँसने का स्वर आया। तुलसीदास ने कहा : अरी मैं ज्योतिष जानता हूँ। कल रात पितरों ने दर्शन देकर कहा कि तुलसीदास ! जाकर ब्याह कर। मैंने पूछा कहाँ जाऊँ ? उन्होंने यहाँ का पता बता दिया।

'हाय जीजा !' नाइन ने ठिठोली की : 'सब जानती हूँ। भूतों ने नहीं, तुम्हें यहां का पता किसी भूतनी ने बतलाया है !'

लड़कियाँ फिर हँसीं।

वृद्ध लौट आया। कहा : वत्स ! तुम्हें मैं वचन देता हूँ। कन्या तुम्हारी ही होगी।

तुलसी को लगा था जीवन सुगंध से भर गया था, लौटते समय पथ पर धूप सुनहली हो गई थी। सब कुछ उस दिन कितना सुन्दर हो गया था !!

विवाह हो गया था। वे गात, वे कोलाहल ! उस समय की स्त्रियों में चलती गालियों को सुनकर तुलसीदास को बुरा लगा था। उसने सोचा था—क्या यही स्त्रियाँ अपनी संतान को इस पवित्र देश में अच्छी शिक्षा दे सकती हैं ? कैसे यह स्त्रियाँ जो इतनी लज्जाशील बनती हैं इतना बक लेती हैं ? और पुरुष सुनते रहते हैं ! वहाँ माँ बेटी, सास बहू, संग बैठ कर कहनी अनकहनी गाती हैं। यह कुरूपता इस देश में कहाँ से आ गई !*

परंतु वह विचार आया चला गया।

रत्ना आ गई थी।

उस मुख पर कितना लावण्य था।

वह घर से चलते समय माता पिता और सखियों से गले मिलकर फूट फूट कर रोई थी। पराये घर जो जारही थी। उसकी आंखों से आँसू नहीं थमते थे। अतीत का सारा ही चित्रपट सजीव हो उठा था और वे मनोमुग्धकारी स्मृतियों के पाश उसे बार बार जैसे बाँध लेते, जिन्हें वह तरल आँसुओं के कर्त्तव्य खड्गों से, बार बार काटने का प्रयत्न करती। पिता ने आशीर्वाद दिया। माता ने उपदेश।

नारी का विचित्र भाग्य था वह ! स्वयं ही तो उसने पुरुष को निमंत्रित किया था कि आ, मुझे अपने साथ ले चल ! और जब वह आ ही गया था तो फिर बिछुड़ते हुए संसार को देख कर रो उठी थी। कैसे होता है यह सब ! कैसे रह लेती है वह एक नये स्थान में जाकर ? पुरुष इस तरह क्या जा सकता है ?

---

* आगे चल कर जानकी मंगल और पार्वतीमंगल इसीलिये लिखे गये थे कि विवाह के समय पर गाये जा सकें।

नये व्यक्तियों से मिलती है और उनके स्वभाव से परिचय प्राप्त करती है, उनके अनुसार अपने को बदलने का भी प्रयत्न करती है।

क्या यही संसार का एक नियम है !

तब तुलसीदास ने सोचा था यही धर्म का पथ है। आर्य पथ यही है। सनातन धर्म यही है।

और फिर वह भावना सब भाप की तरह उड़ गई थी। केवल रत्ना पास रह गई थी।

उसने आश्वासन देना चाहा, परन्तु वहाँ तो एक नया ही चित्र उभर आया था।

रत्ना ने उसे देखा था तो लाज से मुस्करा उठी और मुख पर असीम सुख की प्रतिच्छाया थी !

यह कैसे हुआ ? उसने सोचा !

क्या नारी का नेह ऐसा ही अनबूझ बना देने वाला है ! क्या इस संसार में वह अत्यन्त रहस्यमयी नहीं है ?

और रहस्य की वह अनुभूति तुलसीदास के मन को रत्ना की ओर बरबस और समीप खींचने का मान करने लगी।

घर सज गया।

'मेरे पास है ही क्या रत्ना !' उसने कहा था।

'मेरे लिये तुम हो यही बहुत है,' रत्ना ने उत्तर दिया था।

वह थोड़े से शब्द तुलसीदास के मानसपटल को झनझना उठे।

और अब याद आया।

पहले वसंत आती थी, एक सूनापन सा अनुभव होता था। सब कुछ अच्छा लगता था, परन्तु दूर दूर सा लगता था। पतझर के गिरते पत्तों से छा जाने वाली वीरानगी में मन के न जाने किस कोने में से समता की ललकार सी गूंजती सुनाई दिया करती थी। और भयानक ग्रीष्म में दिन भर

जब लुएं चलतीं थीं, हरहरा कर तप्त धूलि से धरती को भर देती थीं, तब कभी डर लगता था, दाह दाह को पुकारता था; संध्या में प्रकृति थक जाती थी, चारों ओर शीतलता सी छा जाती थी। तब मन किसी शीतलता के नये ही सर्ग को चाहता था! पुरवैया, घने वनों में मर्मर करती, छायाओं से झूमर खेलती अपने उनींदे नयनों को मलने लगती, उस समय लगता था कि इस सबके भीतर क्या गर्भ में कोई एक और पूर्णता है? वर्षा की कड़कती बिजलियाँ, और धारासार गिरते मेघों पर जब मतवाले होकर मोर अपनी हूकभरी कूकों से हरे भरे नीलम छाया वाले पहाड़ों और गड़रिये की बाँसुरी से गूंजते खेतों और मैदानों जंगलों और राहों में एक उल्लास की मादकता भर भर देते थे, तब क्यों लगता था कि अभी कहीं आशा की वीरवधूटी नहीं रेंगी है, अभी कहीं उन्माद का जलधर नहीं झूमा है, अभी कहीं अफेद पक्षियों की भाँति अंगों की वासना का उन्मेष सघन हरियाली पर उड़ कर लय नहीं हुआ है, अभी कहीं अपनी सत्ता की पूर्णता और शांति नहीं मिली है, जो सहज रंगों से स्फुरित होकर इन्द्रधनुष की भांति जगमगा सके?

वह सब अब नहीं रहा। ऐसा लगा कि सब कुछ तृप्त हो गया है, परन्तु यह तृप्ति अपने आप में पूर्ण नहीं है। यह तो एक अग्नि है। जलाये रखने के लिये असीमदाह की आवश्यकता है, ऐसा दाह जो अपने आपको शीतल समझना प्रारम्भ करदे। वहीं वह अन्विरवती दृष्टि के परे स्वयंभू आनन्द है, जहाँ से न गिरने का भय है, न मुरझाने की यातना का आतंक ही।

तुलसीदास खेल नहीं रहा था, वह क्या अपने आप खिलौना बन गया था!

'मैं क्या हूँ रत्ना!' वह पूछता।

'तुम!' रत्ना देखती और फिर उसकी आँखें बोलने लगतीं, मुँह चुप रह जाता। तब तुलसीदास को लगता कि आँखें नहीं; मन बोल रहा है इसका।

फिर अपनी ही उलझन कहती, नहीं यह तो सत्ता का पूर्ण लय है। पूर्ण लय है।

'रत्ना!'

'क्या है नाथ?'

नाथ!!

तुलसी के मन में हूक कसक उठती!

'रत्ना!!'

'जी!!'

'तू मुझे दूर दूर रखती है।'

रत्ना चुप थी।

'ऐसा क्यों करती है?'

उसने अबूझ बन कर देखा।

वह अपने घुटनों पर मुँह रखे देखती रहती, बोलती नहीं।

तुलसीदास उसके केशों पर हाथ फेरता। सरसों के तेल से चिकनी, काली, मोटी वेणी दिखाई देती। तुलसीदास कहता : कैसी नागिन है!!

'कौन?'

'यह!' कवि उत्तर देता।

रत्ना कहती : 'डर गये?'

'तू भी तो मुझसे डरती है?'

'नहीं डरती नहीं।'

'फिर?'

'मैं कैसे कहूँ? स्त्री कभी कहती नहीं।'

'क्या नहीं कहती रत्ना!'

'यही कि वह जब प्रेम करती है तो उसे क्या होता है?'

'क्या होता है आखिर!'

'वह अपने आप को न्यौछावर कर देती है।

'मुझे विश्वास क्यों नहीं होता रत्ना!'

'तुम पुरुष हो स्वामी ? तुम कठोर हो। सनातनकाल से स्त्री ही कोमलता से रहती आई है।'

तुलसीदास मुस्कराया।

रत्ना कहती रही : पुरुष इतना कठोर है, फिर भी स्त्री ने उसे इतना स्नेह दिया है!

'क्यों दिया है रत्ना!'

'मैं नहीं जानती।'

'कहो, अयोग्य को दान देने की आवश्यकता ही क्या है?'

'ठीक कहते हो। परन्तु उसके बिना रहा भी तो नहीं जाता।'

'तू झूठ कहती है रत्ना। तू झूठ कहती है।' कवि कह उठा था।

'क्यों?'

'पुरुष अपने आप को खो देता है रत्ना। पत्थर भी पानी हो जाता है, किंतु कोमल दिखाई देने वाली स्त्री! उसका हृदय अपने ही लिये कोमल होता है, दूसरों के लिये नहीं!'

रत्ना मुस्कराई थी। और तुलसीदास ने कहा था : 'पत्थर ? तू भी पत्थर है।'

'फिर मुझे क्यों चाहते हो तुम!'

'दुर्भाग्य से या सौभाग्य से मैं सदा ही पत्थर को भगवान समझ कर आराधना करता रहा हूँ।'

'कब तक करते रहोगे?'

'मृत्यु तक'

'छिः! क्या कहते हो!'

'क्यों क्या हुआ?'

रत्ना रूठी। कहा : कुछ नहीं!

'ओह! नारी भी कितनी बड़ी उलझन है! कभी उंगली उठा कर पानी पर लिखता हूं तो लहरें जैसे ठहर जाती हैं, कभी धूलि पर अ आ बनाता हूँ तो वह मेरी ही आँखों में आआ कर भर जाती है।'

रत्ना कवियित्री। समझ गई। मुस्कराई। कहा : चलो रहने दो। तुम्हें

तो दिन भर यही रहता है। कोई और बात ही नहीं करते।'

'मुझे और कोई बात भाती ही नहीं रत्ना।'

'क्यों ?'

'मैं तुझे देखना चाहता हूँ।'

'मैं मर गई तो।'

तुलसीदास के नेत्रों में आतंक का बवंडर विक्षुब्ध होकर दूर भीतर मन की विशाल खाइयों में उतर कर जैसे गूंजने लगा।

'रत्ना !'

'क्या है !'

तुलसी ने उसे अंक में भर लिया।

'क्या हुआ नाथ ?'

तुलसी ने कुछ नहीं कहा। वह जैसे कहना चाह कर भी कुछ कह नहीं पा रहा था। शब्द अटक अटक जाते थे, अपने अपने दायरों में जैसे उसकी गहरी अनुभूति को प्रगट कर सकने में असमर्थ हो गये थे।

केवल रत्ना का सिर तुलसीदास के वक्ष पर टिका रहा और वह उसके केशों को सहलाता रहा। उसके बाद कुछ नहीं। एक चिरंतन आश्वासन सा जैसे वह समस्त अंतराल में से अपने लिये खींचे ले रहा था, खींचे ले रहा था।

रत्ना ने सिर उठाया। कहा : स्वामी !

'क्या है रत्ना ?'

रत्ना ने देखा तो विभोर सी उसके मुख को देखती ही रह गई। वह जैसे उस एकांत में लज्जा के परे थी। वहाँ नारी और पुरुष नहीं थे, केवल दो चेतन थे, दो प्राण थे, जो अपने बाह्य में भिन्न होकर भी, जब व्यवधानों को छोड़ चुके थे, तब जैसे वे एक हो गये थे, एक हो गये थे........

यह जीवन एक बड़ा विशाल वन है। इसमें असंख्य प्रकार के द्रुम हैं। वे एक दूसरे के पास रह कर भी एक दूसरे की ओर हवा से झोंके खाकर भी,

अपने अंतस् में एक दूसरे से अपरिचित से ही रहते हैं। परन्तु जब किसी वृक्ष पर बेल चढ़ने लगती है तब समीर भी झकोरे ले लेकर चलता है क्योंकि किन्हीं की प्रेम भरी बातों को सुन कर विहँस उठता है।

इस संसार के वृक्ष पर अनेक पक्षी हैं। पर वे सब अलग अलग से प्रभात में कलरव कर उठते हैं। झुण्ड बना कर उड़ते हैं और दाना पानी चुग कर, चुन कर, संध्या में इकट्ठे ही लौट आते हैं। परन्तु जब नर और मादा पक्षी मिलते हैं तब एक नया ही नाटक प्रारंभ होता है। मादा बैठ जाती है, नर चारों ओर मान मनाता है। फिर दोनों ही नंगी डालें छोड़ कर चोंच से उठा उठा कर तिनके इकट्ठे करते हैं, नीड़ बनाते हैं और फिर जब आकाश में सतरंगी छायाएं सांझ में करवटें बदलने लगती हैं, वे दोनों पक्षी एक दूसरे के पास बैठ कर प्रलय तक को झुठाने की कल्पना करते हैं, अपने को शाश्वत समझ लेते हैं।

यह संसार तो एक विराट समुद्र है। असंख्य ही तो इसमें तरंगें हैं, और इतनी कि उनके स्तरों के नीचे स्तर हैं, और वे अतलांत तक ऐसे ही अपने ही अनुशीलन में डूबती उतराती चली जाती हैं। परन्तु जब दो लहरें चलती हैं तब वे उठती हैं, गिरती हैं, बल खाती हैं और फिर अलग होती, वे एक हो जाती हैं और फिर वे समुद्र का रूप धारण करके अपने आप में सार्थक बन जाती हैं। उनका वैविध्य उनके एकत्व में पूर्णता को प्राप्त कर जाता है।

यह संसार इसी प्रकार बड़ा विचित्र है। जब एक पुरुष और एक नारी मिलते हैं तब मीठे मीठे स्वप्नों का सृजन होने लगता है, ऐसे जिनका कहीं अंत ही नहीं समझा जाता, अपने आप में वे सुपने सचमुच बड़े मीठे और आकर्षक होते हैं। दोनों एक दूसरे से रूठते हैं, और फिर मिलते हैं। खीझते हैं कि अधिक मन को मोह सकें, लड़ते हैं कि एक दूसरे के समर्पण की अति को देख सकें, मिलते हैं कि अपने अपने लय को अभिव्यक्ति दे सकें और और अपनी अपनी सत्ता के अलगाव पर इसलिये अधिक बल देते हैं कि जब तक अलगाव की भावना रहेगी तब तक पास आने को, एक दूसरे में खो जाने की तन्मयता भी उसी रूप में बढ़ती रहेगी। यह तो जैसे पहले आराधना है, फिर नीराजना। पहले यातना है, तब साधना। पहले मुक्ति, फिर बंधन। अनुरक्ति और विकास, जैसे रत्ना और तुलसी अथवा इसका विपर्यय। वहाँ तो कोई भेद करना ही कठिन हो गया, क्योंकि आसान और मुश्किल दोनों छोर एक दूसरे में ऐसे गुंथ गये थे कि वहाँ एक गाँठ पड़ गई थी। और उलझन ही उस गाँठ का पूर्ण सुख था, पूर्ण तृप्ति थी।

और दिन बीतने लगे।

रत्ना ने कहा : 'आज तो मैं लाज से मर मर गई।'

'क्यों!'

'स्त्रियाँ पनघट पर कहती थीं तूने आकर उन पर जादू कर दिया है।'

'तो इसमें झूंठ ही क्या है रत्ना?'

'चलो हटो, तुम्हें लाज नहीं आती।'

'इसमें लाज की बात भी क्या है? हम तुम पति पत्नी नहीं हैं?'

'हैं तो क्या इतने में ही सब कुछ खतम हो जाता है ?'

'इसके आगे क्या है भला ?'

'समाज है। कोई बात है ! लोग कहते हैं कि तुम शाम को कथा सुनाने में भी दिलचस्पी नहीं लेते। पहले वाली बात ही नहीं है।'

'तुझे कैसा लगता है ?'

'मुझे भी यही अनुभव होता है।'

'जो अनुभव तुझे तब हुआ था रत्ना, वह बार बार तो नहीं हो सकता ? और दूसरों में वह पाप होगा भी क्यों ?'

'चलो रहने दो। जब कहती हूँ तो ठिठोली में बात ही उड़ा देते हो। ऐसे कहीं काम चलता है ? मैं कहती हूं दुनिया में मैं ही तो सब कुछ नहीं हूं !'

'तू तो मेरी अर्द्धाङ्गिनी है। तेरे बिना मुझ में पूर्णता कहाँ है रत्ना ?'

'मैं अर्द्धाङ्गिनी हूँ। धर्म पत्नी हूँ। मैं स्त्री हूँ। तुम पुरुष हो। इतना ही तो मेरा तुम्हारा संबंध नहीं है ? हमारा तुम्हारा धर्म का भी तो संबंध है ! हम तुम तो गाड़ी के दो पहिये हैं। एक पर दूसरा अटक कर रह जायेगा तो गाड़ी चलेगी कैसे ?'

तुलसीदास निर्निमेष नेत्रों से देखता रहा। जैसे कुछ सुन नहीं रहा था। रत्ना ने देखा तो मुख लज्जा से लाल हो उठा।

'कितनी सुन्दर है तू !' तुलसीदास ने कहा—'कितनी आकर्षक है।'

'सुनो ! मैं तुम्हारे विलास का कोई साधन नहीं हूं। मैं तुम्हारी पत्नी हूँ। मैं इस तरह अपनी बदनामी नहीं सह सकती।'

'पगली ! वे मूर्ख हैं। वे हृदय नहीं रखते। वे केवल रूढ़ियों में बँधे हुए चलते चले आ रहे हैं। वे नहीं जानते कि जब हृदय हृदय से बोलता है, तब वाणी मूक हो जाती है, और एक स्पंदन ही अव्यक्त गरिमाओं का वहन करने लगता है। मैं उसी को देखता हूं रत्ना। उससे परे कुछ भी नहीं है। मैं जब आँखें उठा कर देखता हूँ तू ही दिखती है। और जब मन में देखता हूं तब भी तू ही दिखाई देती है। मैं क्या करूँ रत्ना ! मुझसे इतनी निष्ठुर न बन।'

रत्ना अवाक् रह गई थी।

तुलसी ने आर्द्र कण्ठ से कहा था—रत्ना !

वह चुप रही थी।

'बोलती क्यों नहीं ?'

उसने रूठ कर मुँह फेर कर कहा था : क्या है ?

'तू जो कहे मैं वही करूँगा।'

रत्ना बोल नहीं सकी।

तुलसी ने कहा था : रत्ना !

वह चुप ही रही थी। पर तुलसी को उत्तर न देते देख कर उसने कहा था : बोलते क्यों नहीं चुप क्यों हो गये ?

'तू पूछती नहीं, तो मैं नहीं बोलता रत्ना। मेरा प्रेम तेरी तृप्ति मांगता है। पर यदि तू भी उपेक्षा करती है, तब भी मैं तुझे नहीं छोड़ सकता रत्ना। तू मेरे हृदय में बसी हुई है। तू तो मेरा ही रूप है। मैं तुझसे अलग नहीं रहा हूँ अब।'

रत्ना ने सुना।

तुलसी कहता गया : जन्म होते ही जिस अभागे को घर में माता पिता और संबंधियों का स्नेह नहीं मिला, जो कुत्ते की तरह अपमान और ठोकरें सहता हुआ अपने हृदय का भार लिये डोलता रहा, उसे अब ही तो स्नेह मिला है रत्ना। मैं बड़ा दुखी था रत्ना ! बड़ा दुखी था। मैं जीवन के प्रति इतना निराश था, कि आखिर मैंने अपने अभावों से भरे दुख को ही अपना सुख मान लिया था। हीनत्व की वह कचोट, अपनेपन का वह तिरस्कार जो संसार ने मुझे दिया था, वह मैं कैसे भूल सकता था रत्ना ! किंतु तू आई तूने मुझे एक नवीन ज्योति दी। तेरे स्पर्श से मैं पर्वत के समान लहलहा उठा हूँ रत्ने ! तू मेरी है। तू मेरी है........

तुलसी का गला रुंध गया।

रत्ना की आँखों में पानी भर आया। वह सुहानुभूति के अश्रु थे या अपने प्रति प्रेम की अभिव्यक्ति की स्वीकृति थी, या एक आत्म सुख था, या नारी की दया थी। या क्या था, यह तुलसी समझ नहीं सका।

देर तक दोनों एक दूसरे को देखते रहे।

'रत्ना !'

'नाथ !'

'तू रूठी तो नहीं है ?'

'नहीं ।'

'मुझ पर तू अपना रोष हृदय में छिपा कर तो नहीं रखती न ?'

'तुम्हें विश्वास नहीं होता ?'

'रत्ने ! मेरी सत्ता केवल विश्वास है। वह विश्वास बड़ा अदृढ़ था, और फिर जब तू आई तो वह अत्यन्त कोमल भी हो गया है। वह स्नेह की भीख मांगता है, याचना करता है.......'

तुलसीदास के हाथ फैल गये थे।

प्रेम का द्वन्द्व कैसा विचित्र था !

नारी ने पुरुष का समर्पण मांगा नहीं था, परन्तु चाहा था। वह उसे मिल गया। परन्तु कोई प्राप्ति अपने आप में पूर्णसांत्वना नहीं होती। अभाव भाव बन कर बोझल हो गया। रत्ना ने तुलसी पर अपने आपको न्यौछावर किया था। तुलसी ने अपना समर्पण।

नारी बेल की भांति छा जाना चाहती थी, पर अपने सहज स्वभाव में उसके भीतर यह भी था कि पुरुष वृक्ष की भांति खड़ा रहे, लचके नहीं। यहाँ तुलसी के भार से जैसे रत्ना दबने लगी। वह इतना कातर क्यों था ! वह भिखारी ही बना हुआ था ! क्यों ? क्या वह अपने आप को इतना भूल चुका था !

रत्ना उन नारियों में थी जिनके अनुसार हर एक की अलग अलग मर्यादा थी। एक क्षण था जब वह अपने को ही तुलसी के लिये एकमात्र विवेच्य समझती थी। दूसरे क्षण वह अपने को ही नहीं, अपने पति के लिये संसार को ही देखती थी ! वह चाहती थी उसका पति प्रसिद्ध बने। उसका सम्मान हो। और तुलसी ! उसकी तो जैसे सारी आकांक्षाएं ही समाप्त हो गई थीं। उसकी

तो चाहें सिमट गई थीं। रत्ना एकशंख थी, तुलसी उसमें बैठा कीड़ा। तुलसी के लिये तो रत्ना थी और कुछ जैसा था ही नहीं।

रत्ना को यह अति अच्छी नहीं लगती थी। जितना ही तुलसी का स्नेह एकांतिक और पत्नीपरायण होता गया, रत्ना का अहं जागने लगा। तुलसी अब उसे पहले के समान नहीं दिखता।

पहले का वह ओजस्वी स्वरूप खोने लगा। उसे लगता वहाँ एक लोलुप व्यक्ति है, जो केवल विलास का प्यासा है, जो रत्ना के तन से ही खिलवाड़ करने को सब कुछ समझता है। इसी को वह इतना प्रतिभाशाली समझ बैठी थी!

जैसे वज्रवेग से उठने वाली लहर, दृढ़तम चट्टान को देखकर उठती है और भरपूर उद्दामशक्ति से उससे टकरा कर, फेन फेन होकर बिखर जाने का आनंद अपने विंदु विंदु में भर कर, अपनी पराजय में अपनी विजय का अनुभव करना चाहती है, वैसे रत्ना तुलसी को देख पुलक उठी थी। परन्तु वह लहर बढ़ी तो देखा वहाँ चट्टान न थी, केवल रेत थी। उससे तो टकराने का प्रश्न ही नहीं था, वहाँ लहर गई, रेत अपने आप भींगने को तैयार थी, भींग गई, और भींगी ऐसी कि उसने न फिर से सूखने की कामना की, न लहर का लौट जाना ही स्वीकार किया। रत्ना से तुलसी ऐसे ही भींग गया था। लहर का असंतोष भड़कने लगा। वह खेलना चाहती थी, और एक ऊँचे स्तर पर, हरहरा कर। यहाँ एक हारा हुआ व्यक्ति था। उसमें तड़क ही नहीं थी।

और यह द्वन्द्व अपनी अति में विसर्जन चाहने लगा, विसर्जन चाहने लगा..............

बरसात आ गई थी। पथों पर कीचड़ हो रही थी। रत्ना पानी भरने गई थी। स्त्रियाँ खड़ी बातें करतीं आपस में ठिठोली कर रही थीं।

चंपा ने कहा : मैं तो कल पीहर चली जाऊँगी।

रत्ना ने कुछ नहीं कहा।

'तू कब जायेगी रत्ना ?' कौसल्या ने पूछा ।

रत्ना उत्तर देती तब तक एक कह उठी : 'यह कैसे जायेगी बहन ! इसका जैसा भाग तो किसी किसी का होता है । इसका पति तो इसे पलकों में मूंद कर सोता है । वह जाने कब देगा !'

'चली जायेगी तो बिचारे को', चंपा ने दबी ज़बान से कहा—'नींद भी नहीं आयेगी ।'

रत्ना कुढ़ गई । बोली : क्या कहती हो ? उनको कौन रोटी बना कर खिलायेगा ?

चंपा हंसी । कहा : मरद तो तेरा ही है न री । हमारे तो सब जाने क्या हैं ? दो दिन आप रोटी बना कर नहीं खा सकता वह !

'अरी लाजकर ।' एक अधेड़ स्त्री ने कहा—'कैसा कलजुग आया है ! लुगाई को शरम नहीं आती कहते । मां बाप से तो नाता ही नहीं रहा । ब्याहता और रखैल का तो फरक ही नहीं रहा ।'

पानी की बूंदें गिरने लगीं ।

हठात् रत्ना को काठ मार गया ।

तुलसी आगया था । उन सब औरतों के बीच उसने कहा : रत्ना ! पानी आ रहा है । तू भींग जायेगी । कहीं रास्ते की कीचड़ में गिर न जाये यही सोचकर मैं आगया हूँ । ला घड़ा मुझे दे दे !

स्त्रियों ने एक दूसरी की ओर इंगित किये । मुस्कराईं । रत्ना की इच्छा हुई धरती फट जाये और वह वहीं समा जाये । क्या कहे वह ? और उसके पति को कोई लज्जा नहीं, संकोच नहीं !! क्या कह रहा है ? सब सुन रही हैं । क्या कहेंगी यह ? रत्ना अब क्या करे ?

रत्ना समझ नहीं सकी । तुलसी ने घड़ा उठा कर कंधे पर रख लिया और कहा : चल । संभल कर चलियो । कहीं गिर न जाइयो !

रत्ना को फिर काठ मार गया । वह उसके पीछे पीछे चुपचाप उतर आई ।

'हायदैय्या !' चंपा का व्यंग सुनाई दिया । 'फरश बिछवादे देवर ! कहीं बहू के पाँव न छिल जायें ।'

तुलसी हँस दिया ।

रत्ना ने मन ही मन कहा : निर्लज्ज !

वह पानी पानी हुई जा रही थी। पीछे स्त्रियों के खिलखिलाने की आवाज आरही थी। वह हँसी सुन सुन कर रत्ना भीतर ही भीतर घुटने लगी।

लकड़ियाँ लेकर बैठते हुए रत्ना बिखर पड़ी।

उसने कहा : यहाँ क्यों बैठे हो चूल्हे के पास ?

तुलसी ने कहा : लकड़ियाँ गीली होगई हैं। तू फूंकेगी तो कष्ट होगा। ला मैं चूल्हा जलादूँ।

'मुझे क्यों नहीं जला देते ?' रत्ना ने हठात् कहा।

'क्या कहती है ?' तुलसी ने पूछा।

'ठीक ही तो पूछती हूं।' रत्ना ने कहा—'तुम्हें सच कुछ समझ में नहीं आता ? दुनिया को उपदेश देते हो, और आप मेरी जगहँसाई कराते हो !'

'मैंने..........मैंने क्या किया है रत्ना ?'

'तुमसे किसने कहा था घड़ा आकर उठाने को ? मैं नहीं उठा सकती थी ? मेरे हाथ टूट गये हैं ? मैं पानी में भीग कर गल जाती ? मैं कीच में फिसल कर गिर जाती तो मर कर ही उठती ? तुम्हें वहाँ आने की जरूरत क्या थी मैं पूछती हूँ ? किसी और औरत का भी आदमी वहाँ आया था ?'

'वे अपनी औरतों की परवाह नहीं करते रत्ना।'

'तुम करते हो अकेले ? प्रेम तो तुम्हें ही आता है कभी लाज भी आती है ?'

'सच कहती है रत्ना।' तुलसीदास ने कहा—'मैं तेरे योग्य ही नहीं था। तुझ जैसी सुंदरी और योग्य स्त्री किसी धनवान के पास होनी चाहिये थी। क्या करूँ ! धन नहीं है, तो क्या मदद भी नहीं करूँ ? मैं जानता हूँ तुझे मैं सुख नहीं दे सका हूँ रत्ना, पर मैं क्या करूँ ? भाग्यहीन हूँ। सदा से ही ऐसा रहा हूँ। आज भी हूं।'

रत्ना उत्तर नहीं दे सकी। वह रोने लगी।

'क्यों रोती है रत्ना !'

वह नहीं बोली। तुलसी ने उदास स्वर में कहा—'दरिद्र का स्नेह भी उपहास बन जाता है। यह संसार कितना विचित्र है।'

'चुप रहो।' रत्ना चिल्लाई। 'मैं कल मायके जाऊँगी।'

'मुझे छोड़ कर !'

'तो क्या तुम सुसराल चलोगे ?'

'क्यों मैं नहीं चल सकता।'

'तुम आदमी हो कि अपनी सारी मान मर्यादा खो बैठे हो ?'

'तो तू कितने दिन में लौटेगी ?'

'मैं न लौटूँ तो मेरी लाश लौट आयेगी। ऐसी क्यों चिंता करते हो ?'

'रत्ना !!' तुलसी पुकार उठा।

'क्या है !'

वह स्वर कठोर था। उसमें कोई सरसता नहीं थी, कोई निकटता नहीं थी।

तुलसी ने आँखों पर हाथ धर लिया।

'तुमने सुना था ?' रत्ना ने पूछा।

'क्या ?'

'वे औरतें हँस रही थीं।'

'तुम्हें उनसे क्या ?' तुलसी ने टोका।

'तुम मेरे कौन हो जानते हो ?'

'कौन हूँ ? पति हूँ।'

'पति हूँ।' रत्ना ने मुँह चिढ़ाया। 'कभी शीशे में शक्ल देखी है ? पति लुगाई के पीछे ऐसा डोलता है ? तुमने तो मेरी नाक कटा दी। अरे मरद हो। मरद बन कर तुम्हें रहना नहीं आता ? चूड़ी पहनकर बैठ जाओ। मैं कर लूँगी सब काम ! ऐसा होता है पति ?'

बड़बड़ाती रही, जाने क्या क्या।

थाली परोस कर सामने रखी। तुलसी ने हाथ नहीं बढ़ाया।

'खाते क्यों नहीं ?' रत्ना ने कहा—'क्यों जलाते हो मुझे ? मार क्यों

नहीं डालते एक बार ही।'

तुलसी चुप ही बैठा रहा।

'तुम्हें सौगंध है मेरी।' रत्ना ने कहा। 'खाओ! नहीं तो मैं भी नहीं खाऊंगी।'

तुलसी ने हाथ से थाली सामने लेकर कहा: 'रत्ना! तुझे भी क्या घमंड है? तू क्या मेरे प्रेम को अच्छा नहीं समझती? एक दिन तू देखेगी कि तुलसी ने तुझे प्यार किया था रत्ना!'

रत्ना ने मुड़ कर नहीं देखा। रोटी सेकती रही।

तुलसी सोचता रहा।

'खाते क्यों नहीं?' रत्ना ने कहा: 'क्या आज कथा सुनाने नहीं जाओगे रात को?'

'जाऊँगा क्यों नहीं!'

'भला तो। इतना तो कहा। वर्ना आज तो खैर नहीं थी। सब स्त्रियाँ कहतीं, ओहो कैसी घटा छा रही है, रत्ना ने न आने दिया होगा ....

और कहते तो कह गई, पर लज्जा से उसका मुख आरक्त हो गया। तुलसी ने कहा: तू तो बेकार डरती है। अरी! वे तुझसे जलती हैं समझी! जलती हैं।

रत्ना ने ऐसे देखा जैसे क्या करूँ? तुम तो जाने क्यों समझते ही नहीं। पर तुलसी खाता हुआ कह रहा था: खाना तो रत्ना तू बनाती है। तेरे हाथों से छूकर रोटी में कितना स्वाद आ जाता है?

रत्ना ने चिढ़ कर अपने सिर पर हाथ मार लिया। चून बालों में लग गया। पर तुलसी अभी तक खाने की तारीफ ही करता जा रहा था.........

अनंता नाई आ गया।

उसने कहा: चलो बहू!

'कौन है?' तुलसीदास ने कहा।

'अनंता हूँ। बहू ने बुलाया था।' बूढ़े ने कहा।

'क्यों?'

'वे पीहर जायेंगी। उन्हें पहुंचाने आ गया हूँ।'

तुलसी ने पुकारा : रत्ना!

'क्या है!' वह बाहर आई।

'तू जा रही है?'

'मैंने कल कहा तो था!' उसने पूछा।

'लेकिन', तुलसी ने कहा—'तू चली जायेगी तो मैं किसके सहारे जियूंगा!'

रत्ना ने जीभ काटली। अनंता मुस्कराया। रत्ना को आग लग गई। बोली : तू जा अनंता! मैं बुलवालूँगी तुझे।'

'नहीं,' तुलसी ने कहा—'तू जा। तुझे आने की जरूरत नहीं है। यहाँ सब पटरा हो जायेगा।'

अनंता चला गया। रत्ना रोने बैठ गई।

तुलसी समझा नहीं। बोला : अरी रोती क्यों है? तुझे यहाँ कोई दुख है!

रत्ना ने उत्तर नहीं दिया। घड़े उठाये और मुँह पर घूंघट खींच कर चली गई।

कुंए पर पहुँची तो स्त्रियों ने इशारे किये। अनंता नाई ठहरा। उसने घर से निकलते ही सब जगह बात फैलाने वाली अपनी नाइन से कह दिया और नाइन अपने धर्मनुसार सबसे कह आई। किसी से भी कहा तो कसम देकर कहा कि बस उसीसे कह रही है और उसे भी किसी से नहीं कहना चाहिये।

कौसल्या ने कहा : रत्ना! कल तू गिरी तो नहीं!

रत्ना को लज्जा हुई। कहा : गिर जाती तो तुम्हें सुख मिल जाता?

'कैसे गिरती भला?' एक और बोल उठी 'गिरने को तो जगत की लुगाइयाँ हैं। उसको तो वह है न उसका! धरती पर पाँव ही नहीं रखने देता।'

'अपने अपने भाग हैं। तुम क्यों जली जाती हो।'

'अरे आग लगै ऐसे भाग में। बंगाले की जादूगरनी की तरह मेढ़ा बना रखा है। और मैं कहती हूं लोग कहते हैं इतना बड़ा पंडित है, पर अपनी

अकल जरा नहीं ।'

'चाची !' एक ने मज़ाक में कहा—'रूप और जवानी की बात अब भला तुम क्या जानो ?'

'हाँ लाली ।' उस स्त्री ने कहा : 'मरद किसका नहीं होता । मेरे ही नौ बच्चे हुए । पर ऐसा कभी नहीं हुआ । वे अब तो नाना हो गये अभी दिन में नहीं बोलते, और यह भी खूब बेशरमी उठा रखी है । दिनदहाड़े लुगाई के घड़े लेकर कहता है—कहीं रपट न जाये । ऐसी नहीं बड़ी रानी ले आया है फूलनदेई !!'

रत्ना का मुँह स्याह पड़ गया ।

'छिः । ऐसा क्यों कहती हो ?' एक अन्य स्त्री ने जले पर नमक छिड़का : 'तुम्हारे नौ हुए । उसके तो अभी एक भी नहीं हुआ !'

स्त्रियाँ ठहाका लगा कर हँसी ।

'क्यों री ?' दूसरी ने कहा—'क्या कर दिया है तूने । कोई टोना टोटका कर दिया उस पर ?'

'क्या कहती हो ,' रत्ना ने खिसिया कर कहा—'तुम्हें लाज नहीं आती ?'

'अरे लो । सुनती हो चाची ! लाज हमें नहीं आती !! तुझे तो आती है न जो मरद पर घड़े उठवा कर भरी सड़क पर मटकती छम छम करती चली आती है । यह ब्राह्मनों के लच्छन हैं । ऐसा तो हमारे गाँव में पतुरिया भी नहीं करतीं ।'

रत्ना का मन हुआ उस स्त्री का मुँह नोंच ले । परन्तु क्या करती । चुप चाप घड़े भरने लगी ।

जब वह लौटी तो हृदय फट रहा था ।

घर पहुँच कर खूब रोई । खूब रोई ।

चंपा आ गई ।

रत्ना ने तुरन्त आँखें पोंछ ली !

चंपा ने कहा : क्यों रत्ना कुछ मँगायेगी ? मेरे गाँव में चूड़ियों वाले ब्यापारी बड़ी अच्छी अच्छी चूड़ियाँ लाते हैं ।

'नहीं भाभी !'

'क्यों ?'

रत्ना चुप रही।

'अरी तू रो रही थी क्या ?'

रत्ना ने शर्म से सिर झुका लिया।

'क्यों रोती है भला। मुझसे कह पगली। कुछ तकलीफ है ? घर में कोई और औरत है भी तो नहीं। कुछ होने वोने·······

'छिः छिः भाभी नहीं।' रत्ना ने कहा—'क्या कहती हो ?'

'क्यों, ऐसी कोई अनहोनी बात तो कहती नहीं। आखिर होते ही हैं।'

रत्ना कह नहीं सकी।

'तो क्यों बिहाल हुई जाती है ?'

रत्ना का गला रुंध गया।

'अरी बता न ?' उसने स्नेह से पूछा।

'भाभी !' रत्ना ने झिझकते हुए कहा।

'हाँ हाँ !'

'वे तो पीहर ही नहीं जाने देते।'

'अरी बस इतनी सी बात है ?'

रत्ना को ढाढस हुआ।

चम्पा ने कहा—'सब मरद शुरू में ऐसा ही प्रेम जताते हैं। एक आद बच्चा हुआ कि फिर खतम। फिर तो गाड़ी ढोई जाती है। तेरे जेठ भी ऐसे ही थे। मुझे तो परेशान कर दिया था। रो रोकर घर में हलकान हुई जाती थी, पर मानते ही न थे।'

'तो ये ही अकेले ऐसे नहीं हैं ?'

'अकेले ! सब ऐसे ही होते हैं। नयी औरत पर तो ऐसी जान देते हैं कि बयान नहीं।'

'तो मैं क्या करूँ ?'

'मुझसे ही पूछती है ?'

रत्ना समझी नहीं। कहा—'फिर ?'

'अरी चली जा चुपचाप ।'

वह डरी । कहा : 'और जब वे लौटेंगे तो ?'

'कहाँ गया है देवर ?'

'बजार ।'

'इस आँधी पानी में बजार में क्या है ?'

'भाभी कैसे कहूँ ? शरम से गड़ी जाती हूँ ।'

'क्यों ?'

'आज कहीं से रुपये ले आये थे । बोले तेरे लिए एक अच्छी सी चुन्दरी ले आऊँ ।'

चम्पा हँसी । कहा : अरी यह मरद की जात ही ऐसी है । यह समझते हैं कि स्त्री तो गहने, कपड़े, खाने की भूखी होती है ।

'तो चली जाऊँ ? अनन्ता बुलाने आया था, उसे तो उन्होंने लौटा दिया ।'

'सफ़ा जा । मैं तो कल जाऊँगी अब ।'

'क्यों ?'

'भइया आया लेने । वह अभी कुछ काम से एक दिन को ठहर गया है पर एक बात है ?'

'क्या ?'

'तू जा तो रही है, पर कहीं मेरा नाम न आये ।'

'कैसे ?'

'कि मैंने तुझे भेज दिया ।'

'आजाये तो क्या है ?'

'अरी, देवर तो मेरे उनसे कह देगा । तू नहीं जानती, यह मरद मरद आपस में फौरन मिल जाते हैं ।'

'अच्छा नहीं कहूँगी ।' रत्ना ने कहा ।

आकाश में घटाएं टकराने लगीं। और सफ़ेद रंग के पक्षी कलरव करते हुए विराव देकर उड़ चले। नीली छाया पृथ्वी पर लोटने लगी। उन्निद्र वासना सी घटा क्षितिज पर बोझिल होकर फैल गई। तुलसी का मन उस वातावरण को देख उच्छ्वासित हो उठा। वह अत्यन्त विह्वल हो उठा। घर की ओर चल पड़ा। कल्पना सजग थी। रत्ना के रूप को उसने मेघों के बीच में बिजली के समान चमकते देखा। वह अब घर जा रहा था।

रत्ना बैठी होगी। अकेली। आज वह रूठी हुई होगी। तुलसी जाकर उसको मनुहार से रिझायेगा। आज वह गायेगा। वह और मान करेगी, परन्तु अंत में बांध टूटेगा और जैसे महानदी महासमुद्र में जाकर गिरती है, ऐसे ही रत्ना उसकी भुजाओं में आ गिरेगी, फिर जल में जल मिल जायेगा और केवल आनंद की आर्द्रता शेष रह जायेगी।

घर पहुँच कर तुलसी ने देखा द्वार खुला था। माथा ठनका।

पुकारा—रत्ना!

कोई उत्तर नहीं आया।

वह आंगन में बैठ गया। सोचा अभी आती होगी।

परन्तु वह नहीं आई।

कहीं गई होगी?? इस समय!! कुंए पर? पर घड़े तो यह रखे हैं।

तुलसी घबराने लगा। वह दौड़ कर कुंए पर गया। वहाँ पूछा: रत्ना आई थी?

चंपा ने देखा तो हँसी। कहा: 'लाला! भाग गई क्या?'

'क्या कहती है भाभी?'

'अरे तुम जैसे मरद ही लुगाई को चैन से नहीं रहने देते। सिर चढ़ा लिया है न तुमने उसे ? भाग गई शायद !'

तुलसी आहत हुआ। सब स्त्रियाँ ठठा कर हँसीं।

'हाँ।' एक ने कहा : 'कल वह कहती तो थी।'

'क्या ?' तुलसी ने पूछा।

'मायके जाने की बात कहती थी।'

'मायका ! मैंने मना किया था।'

'क्यों भला ?'

'यहाँ मैं.........मैं.........'

परन्तु उसे कहने का अवसर नहीं मिला। स्त्रियाँ फिर खिलखिला कर हँस पड़ीं। तुलसी लौट चला।

घर आया परन्तु अब अंधेरा घना सा हो चला था।

वह मायके गई है ! कैसा भयानक काम कर दिया है उसने ! किसी को साथ ले जाती तो ? भला। परन्तु उसके पिता यहाँ तो है नहीं। वे तोअपने गाँव गये हुए हैं। वह उनसे मिलने को क्या तारपिता गई है ? तारपिता ! वह गाँव तो दूर है ! जमुना किनारे है। रत्ना ! अकेली !! इस सुनसान तूफान के कगारे पर लड़खड़ाती सांझ में मेरी रत्नावली ! रत्ना अकेली गई है !!

किसने दिया उसे इतना अधिकार !! कैसे उसकी इतनी हिम्मत पड़ सकी ! जब जाने से स्वयं मैंने मना किया था ! आखिर मेरी बात का कोई तो मूल्य था ही। संसार जानता है मैं उसका पति हूं। परन्तु उसने इस कान से सुना उस कान से उस बात को निकाल दिया। उसने कोई परवाह नहीं की। उसने तो मेरी सत्ता को ही अस्वीकृत कर दिया। अरे ! जैसे मैं कुछ हूँ ही नहीं !

आवेश व्याकुल करने लगा। विश्वास नहीं हुआ।

तुलसी ने पुकारा : रत्ना !! रत्ना हो !!!

सूने घर में शब्द टकराया। गूंज उठा।

'रत्ना ! रत्ना हो !' तुलसी ने फिर पुकारा।

फिर प्रतिध्वनि उठी।

तुलसी भीतर घुस गया। एक एक वस्तु उठा उठा कर फेंकने लगा। नहीं। किसी में भी रत्ना नहीं है।

आकाश में मेघ घमंड से गरज उठा। तुलसी का मन प्रियाहीन आज डरने लगा।

बाहर आकाश के पनघट पर जैसे अप्सराओं के कंकण बज कर चमके, और उनके घड़ों से कुछ जल छितरा गया और फुहार सी झर उठी।

'आजा रत्ना !' तुलसी ने मनुहार की—'तू मेरी सर्वस्व है, तेरे बिना मैं नहीं रह सकूँगा, नहीं रह सकूँगा।'

अंधेरा गरजा : ऊँगा, ऊँगा !

तुलसी चकित हो गया।

ऐसा लगा जैसे सब कुछ बड़ा निर्मम था। अंधकार भीम होकर डराने लगा। वायु सनसनाती हुई आकर आंगन के द्वारों को झुला सा गई और खटाखट करके वे बंद होकर फिर खुल गये।

वज्रनाद हुआ। तुलसी ने कान बंद कर लिये। परन्तु अब हृदय में दूसरा भाव जागने लगा। नया आवेश था, नयी स्फूर्ति मचलने लगी थी।

'रत्ना !' वह दाँत भींच कर फुस फुसाया—'तू मेरी है। तू मेरी स्त्री है। मैं तुझे नहीं जाने दूँगा। मैं तुझे नहीं जाने दूँगा। तुझे मेरे पास ही रहना होगा।

तुलसी भाग चला।

नदी अब आलोड़ित विलोड़ित होने लगी थी।

तुलसी ने कहा : 'मांझी। पार चलना है।'

'नहीं पंडित तूफान आने वाला है।'

'मैं तुझे दुगनी मजूरी दूँगा।'

'दूसरी जिंदगी तो न दे दोगे ?'

तुलसी निराश होने लगा। क्या करे ?

दूर हल्की सी रोशनी में नाव चली जा रही है। पूछा : उस नाव पर कौन कौन था !

मांझी ने कहा : कौन नहीं था ? कई थे।

'कोई औरत थी ?'

'थीं तो। कई थीं।'

तब ! तबतो रत्ना ही होगी।

सोचने का समय ही कहाँ था।

तुलसी हार जायेगा ?

नहीं, वह नहीं जाने देगा उसे। नहीं जाने देगा उसे।

मांझी चिल्लाया : क्या करते हो ? तूफान टूटने वाला है। मर जाओगे।

परन्तु वह चिल्लाता ही रह गया।

तुलसी उन्मत्त सा उन्मत्त नदी में कूद पड़ा था। लहर निगलने को उठी। मांझी ने देखा वह पानी में खोगया था। फिर भीम प्रयत्न करके तुलसी पानी के ऊपर आगया। आंधी चिल्लाई, लगा रत्ना पुकार रही थी। अनंत नील व्योम से लेकर ऊभचूभ करने वाली पागल लहरें एक ही रूप से परिव्याप्त हो गई थीं, वह रूप रत्ना का अनिंद्य सौंदर्य था। आकाश में बिजली चमकी मानों रत्ना मुस्करादी।

तुलसी ने हाथ फैला दिये और चिल्लाया : रत्ना हो ! रत्ना !

और तभी उसके हाथों से कुछ टकराया। उसने उसे एक हाथ से पकड़ लिया। सहारा मिल गया। और दूसरे हाथ के सहारे से तैरता हुआ वह शीघ्र ही मांझी की दृष्टि से ओझल हो गया। फिर घना सा अंधकार उसे लहरों में उठा उठा कर पटकने लगा। परन्तु आँखों में वही आवेश था, वही घोर वासना उसे मदमत्त बनाये दे रही थी, वह आज अपने आपको भूल गया था..........वह वासना त्रिभुवन में से संकुचित होकर मानों आज तुलसी में गरजने लगी थी..........

बड़ी वाली नाव में एक क्षीण सा स्वर सुनाई दिया : रत्ना हो ! रत्ना !

रत्ना चौंक उठी।

फिर सुनाई दिया : रत्ना हो ! रत्ना !

रत्ना आतंकित हो उठी।

'कौन पुकार रहा है ?' बूढ़े मांझी ने कहा।

'नाव संभालो !!' जवान मांझी चिल्लाया।

नाव डगमगा गई। पानी उछल रहा था। आकाश में बिजली कड़क रही थी और वक्ष पर घूंसा सा मार उठती थी। लहरें नाव से टकराईं। पानी छितरा गया। रत्ना ने झुक कर देखा। कहा : नाव धीमी करो। मुझे शायद वेही पुकार रहे हैं।

स्वर आया : रत्ना ! हो रत्ना !

'रोक दो नाव, रोक दो', रत्ना व्याकुल स्वर में चिल्लाई। यात्रियों ने उसे पकड़ लिया।

मांझी चिल्लाया : 'नाव रोक दें ? क्यों ? तूफान टूटने वाला है। जल्दी से जल्दी पार उतरना है।'

'मगर वे मुझे बुला रहे हैं।'

'अरे एक के लिये क्या सबकी जान जोखों में डाल दें।'

'जोर से खेओ। पाल खोल दो।' बूढ़ा चिल्लाया।

पाल खुल गये। नाव लहरों पर झटके खाने लगी। कभी कभी पानी छितरा कर नाव के भीतर भी आजाता और सब डॉवाडोल हो उठते !

तूफान ने ठहाका लगाया। पुकार आई : रत्ना हो रत्ना !

रत्ना का मन थर्रा गया।

यह आवाज तो लहरों में से आ रही है !

भयानक। तूफान की अगवानी में लहरें भयानक नाद से नगाड़े बजाने लगीं थीं। विनाश के झंडे की तरह आंधी फुंकारती हुई खुल गई थी। रत्ना

का दिल बल्लियों उछलने लगा। उसने जोर लगा कर अपने को छुड़ाते हुए पुकारा : मुझे छोड़ दो, मुझे छोड़ दो। तुम नहीं रोक सकते, तो मुझे जाने दो।

'पागल हो गई है लड़की।' एक यात्री ने कहा।

उन्होंने उसे पकड़ कर बिठा लिया।

नाव फिर झटके खाने लगी। अचानक मांझी कूद पड़ा। नाव किनारे पर खिंच गई।

वे सब उतर पड़े।

उस समय हठात् सब के मुँह खुले रह गये। भीम लहर ने तुलसी को किनारे पर फेंक दिया। वह व्याकुल सा। 'रत्ना! मेरी रत्ना!' कह कर रत्ना से जाकर चिपट गया।

रत्ना रो पड़ी।

एक बूढ़ी ने कहा : अरे सत्यनाश हो गया।

'कलियुग है, महान कलियुग है।'

यात्री बात करने लगे।

'क्यों क्या हुआ?'

'जानते हो यह किस तरह आया है?'

'मैं देखूँ क्या बात है?

'यह तो लाश पर चढ़ कर आया है।'

'लाश!!!'

रत्ना छिटक कर खड़ी हो गई।

यात्री बात करते रहे : 'लुगाई ने अंधा कर दिया है इसे।'

'अरे यह बामन तो बड़ा कामी है।'

'राक्षस है राक्षस!'

'लाश पर चढ़कर आया है।'

'इसे डर नहीं लगा?'

'डर! वह तो विलासी है।'

'धिक्कार है।'

'लुगाई भी बड़ी कुलटा है।'

'भई हद्द होगई।'

तुलसी आतंकित सा खड़ा था। रत्ना उसे घोर क्रोध से देख रही थी, जैसे आँखों से भस्म कर देगी।

फिर यात्रियों में तानेबाजी शुरू हुई।

'एक दिन नहीं रहा गया इससे।'

'तभी तो घबरा कर भाग रही थी।'

'इनसे तो जानवर अच्छे।'

'और जरा लाज नहीं।'

'थू है।' किसी ने थूका।

रत्ना ने एक बार दाँत पीसे और कहा : धिक्कार है तुम्हें!

तुलसी घबरा गया रत्ना के शब्द सुनाई दिये : तुमने मेरे हाड़ चाम से इतना प्रेम किया, इतने अन्धे हो गये! अगर इससे आधा भी भगवान से किया होता तो जन्म जन्मांतर के पाप धुल गये होते!

वह अंधेरे में ही पाँव पटक कर चली गई। लोगों ने विद्रूप से अट्ट-हास किया।

तुलसी ने सुना और वहीं सिर पकड़ कर बैठ गया।

आकाश में वज्र ठनका। दिशांतों तक जैसे अपमान की विभीषिका प्रतिध्वनित हो उठी!

यात्री फिर हँस उठे।

कामी!

विलासी!!

पशु!!!

राक्षस!!!!

तुलसी को लगा यह धरती फट जाये तो वह उसमें वहीं समा जाये। किसी

को भी अपना मुख नहीं दिखाये। उसने नारी को केवल भोग्य समझा! क्यों, वह इतना अंधा किस तरह हो गया।

यात्री चले गये थे।

तुलसी अकेला बैठा था।

उस समय मानों कोई हँसा। वह नरहरि गुरुदेव थे। उन्होंने मानों हाथ की तर्जनी उठा कर, भौंए चढ़ा कर विकराल क्रोध से कहा : नीच! कुत्तों के साथ पलने वाले भिखारी। तू इसी योग्य था कि तू पथों पर टुकड़े माँग मांग कर खाता, द्वार द्वार गिड़गिड़ाता फिरता! तूने ब्राह्मण गौरव को खण्डित कर दिया। क्या इसीलिये मैंने तुझे पाल पोस कर बड़ा किया था।

उस समय मानों आचार्य शेष सनातन ने वेदघोष करना छोड़ दिया और आसन उलट कर आग्नेय नेत्रों से देखते हुए गरज उठे : कुलाङ्गार! अधम! तू पतित है। तू जघन्य है। तूने नारी को ही अपना अंतिम ध्येय मान लिया! तूने उससे, अचिरवती से इतना विलासी प्रेम किया! तू लाश पर चढ़ कर चला आया और तुझे अपनी नीच वासना में यह ज्ञान भी नहीं रहा!

तूफान धकधकाता हुआ गरजा। आकाश में, बादलों के स्याह धूंऐ में बिजली एक पतली लपट की तरह काँपी और फिर जल धरती पर सहस्रफन महानाग की भांति विष सा उगलने लगा।

तुलसी का सिर फटने लगा।

उसे चारों ओर सर्वनाश दिखाई दिया। वहाँ घोर यातना थी और ग्लानि के आरे से उसके मन को उसका अहं अब धीरे धीरे काटने लगा, धीरे धीरे उसमें से लहू बहने लगा।

वह लज्जा से जल में कूद गया।

क्या करेगा वह जीकर!

वह आत्म हत्या करेगा।

किन्तु मानों लहरें गरजीं, 'नहीं! नहीं!! तू पापी है। तुझे पचा लेने की शक्ति महासमुद्र में भी नहीं है।'

उसे तरंगों ने फिर किनारे पर उठा कर फेंकदिया।

शेष सनातन चिल्लाये : कायर ! ओ ब्राह्मणों के अपमान ! तू जीवित भी तो मर गया है।

'तू सड़ रहा है ! पापों के नासूर ही तेरे शरीर में मवाद बन कर भर गये हैं।' गुरुदेव नरहर्य्यानन्द ने फूत्कार किया।

तुलसी फिर सिर पकड़ कर बैठ गया।

आंधी चलती रही। तुलसी पड़ा पड़ा रोता रहा। फिर बादलों का गर्जन बहुत बढ़ गया। मूसलाधार वर्षा होने लगी। अत्यन्त कर्कश निनाद करके बिजली गिरी और फिर हुमस सी खींच कर सब कुछ शांत हो गया। तुलसी उठा। उसने उस समय घुटनों के बल बैठकर आकाश की ओर हाथ उठा कर पुकारा : प्रभु ! मुझे क्षमा करो ! जीवन पर्य्यन्त मैं इस पाप का प्रायश्चित्त करूँगा। मुझे क्षमा करो। मैं नराधम हूँ। परन्तु अजामिल भी पापी था, गणिका भी पापिन थी, मुझे भी अपने चरणों पर पड़ा रहने दो !! मुझे भी द्वार पर पड़ा रहने दो प्रभु !

नरहर्य्यानन्द ने मानों कहा : उठ ! फिर जीवन प्रारंभ कर। फिर से उठ। पवित्र होकर चल। और कर्त्तव्य कर।

शेष सनातन मुस्कराये। कहा : धर्म के लिये अपने को खोदे। तू पापी है। यही तेरे उद्धार का मार्ग है।

'यही होगा प्रभु ! यही होगा !' तुलसी आर्त्त स्वर से पुकार उठा और उसने साष्टांग दण्डवत की।

तुलसी व्याकुल हो उठे

आज भी वह दृश्य याद आते ही रोम रोम कंटकित हो गया। आग सी जलने लगी।

पाप !! घोर पाप था वह !!!

मनुष्य का पशुत्व ! उसका पतन !! कितना घृणित था वह सब ! तुलसी ने ही किया था !! कैसे आगया था उसमें इतना ममत्व !! कैसे भूल सका था वह अपने आपको !!

क्या था रत्ना में ऐसा ?

परन्तु यह प्रश्न तो मन में आज उठ रहा है। उस समय रत्ना के अतिरिक्त और कुछ क्यों नहीं सूझता था ? क्यों कर वह पागल यौवन खड्ग की धार पर अपने पवित्र जीवन का सर्वनाश करने को चल पड़ा था ! ठीक ही है। जिसमें शक्ति है वही आवेश की सीमा प्राप्त कर सकता है। जिसमें ऊँचाई है वही गहरी छाया भी डाल सकता है।

'नहीं, नहीं।' महाकवि बुदबुदा उठे। आज क्या वे फिर पाप की बात सोच रहे हैं ?

अरे पाप !

तू अभी तक जीवित है ? अरे काम ! तू मनुष्य की मृत्युशैया पर भी अपना प्रभुत्व दिखाने की सामर्थ्य रखता है ?

'प्रभु !' महाकवि चौंककर चिल्ला उठे—'मैं पातकी हूँ, मैं पापी हूँ। मेरे सारे जीवन में मेरा हृदय शुद्ध नहीं हुआ। वासनाओं की मलीनता मेरे हृदय पर छाई रही, जिसके कारण मैं शुद्ध दर्पण जैसे मानव जीवन में तुम्हारी पवित्र प्रतिकृति को आज तक नहीं देख सका। क्षमा करो राम ! मेरे स्वामी ! मैं अपने ही अहंकार में डूबा रहा। मैंने जगत के अनेक व्यापारों के जंजालों में अपने को फँसाये रखा और नारी की काया में मैंने अपने को बंदी बना लिया। मैं उस रक्त माँस की ढेरी में अनन्त सुखों को खोजता हुआ मृग मरीचिका में हाँफता हुआ भागता रहा। एक दिन भी यह नहीं समझ सका कि इस लघुता के पार एक विशाल आकाश है जिसमें आनन्द का देदीप्यमान सूर्य अपना भव्य आलोक त्रिभुवन में विकीर्ण किया करता है !

किसलिये भूला रहा यह हृदय ! अपनी ही चंचलता के कारण यह कभी शीत कभी उत्तप्त होता हुआ विमूर्च्छित सा जन्मांतर के गह्वरों में पड़े वायु के झकोरे के समान चिल्लाता हुआ सिर पटकता रहा।

राम नाम की पवित्र मणि मुझ विषधर के अन्दर मुझसे अलिप्त होकर चमकती रही। मैं उसके आलोक को देखकर चमत्कृत तो हुआ किंतु उसे अपने रोम रोम में भर कर अपने विष को नष्ट नहीं कर सका।

राघव ! तुम्हारी करुणा दृष्टि मुझ पर अभी तक क्यों नहीं हुई ? तुम तो चराचर के स्वामी हो ! करुणा निधान तुम्हारी दया अनन्त क्षीर सिंधुओं से भी गहन और गंभीर है।

मुझे स्वर्ग नहीं चाहिये, मुझे वैकुण्ठ नहीं चाहिये, मैं श्मशान की धूलि में मिलना चाहता हूँ, क्योंकि मैं पापी हूँ। किंतु प्रभु ! तुमने अजामिल जैसे पातकी का उद्धार किया था, तुमने गणिका को पवित्र कर दिया था। क्या इस तुलसीदास की रक्षा नहीं करोगे प्रभु !

भाग्य का सदैव से दीन रहा हूँ और जीवन में सुख की व्यर्थ ही खोज करता रहा हूँ। न जाने कितनी बार यह हृदय चकनाचूर हो चुका है। जब जीवन से निराश हो होकर मृत्यु की कामना की थी, तब भी यही सोचा था कि नहीं; इस दारुण यातना के ऊपर एक सत्य और है। वही लोक का कल्याण है। कौन जानता है, कौन चिंता करता है ? व्यक्ति की सत्ता का आधार प्रभु के अतिरिक्त और कहाँ है !

नारायण और मलूक भीतर आ गये।

मलूक ने पुकारा : गुरूदेव !

'गुरुदेव !' नारायण ने आर्द्र स्वर से आवाज दी।

'कौन ?' तुलसीदास चौंक उठे !

'मैं हूँ गुरुदेव !' मलूक ने कहा।

महाकवि ने कहा : 'मलूक !!'

'गुरूदेव !!'

'मेरे पास आ वत्स !'

वह पास आगया।

'वत्स ! मैं महापापी हूँ।'

'गुरूदेव ! यदि आप पापी हैं तो हम लोग फिर क्या हैं ?'

'तुम पापी नहीं हो बेटा ! पापी तुलसीदास है !'

'ऐसा न कहें गुरुदेव !'

'तू नहीं जानता वत्स !'

'मुझसे कहें प्रभु !'

'तुझसे कहूँगा बेटा। अवश्य कहूँगा। अपने पाप को मैं छिपाऊँगा नहीं। मेरा पाप जानता है ?'

'नहीं बाबा !'

'मैं राम को भूल गया था बेटा।'

मलूक चुप रहा।

'लेकिन राम मुझे नहीं भूले।'

मलूक ने आश्चर्य्य से देखा। महाकवि के मुख पर एक असीम तन्मयता थी। उन्होंने कहा : बेटा !

गुरुदेव !!

वह गा ! अञ्जनीकुमार की स्तुति गा। पाप दूर होगा। रामभक्त तो राम से भी बड़ा है वत्स ! मुझे उन्नद्ध स्वर में सुना।

मलूक गाने लगा :

जयति अजनी-गर्भ अंभोधि संभूत-विधु,
विबुध कुल - करवानंदकारी
केसरी - चारु-लोचन - चकोरक - सुखद,
लोकगन - सोक संतापहारी।

गीत समाप्त हुआ। महाकवि प्रसन्न हो उठे। बोले : धन्य है तू मलूक ! तेरा स्वर कितना अच्छा है !

'अब तबियत ठीक है ?' मलूक ने पूछा।

'हल्की है वत्स। मैं उद्विग्न हो गया था।'

'क्यों गुरुदेव !'

'मेरी वासना का अतीत मुझे याद आ गया था। उसकी दारुण लज्जा मुझे रुलाने लगी थी। परन्तु राजाराम की दया असीम है। वह बाद अब रुक गई है।'

मलूक नहीं जानता था। नारायण बाहर चला गया। मलूक चुप था।

नारायण ने पुकारा : मलूक!

मलूक बाहर गया।

'क्या है?' उसने पूछा।

'तुम गुरुदेव को विश्राम क्यों नहीं करने देते?'

'मैं क्या करूं! वे गाने को कहते हैं।'

'आज वे मुझे बहुत विचलित से हो उठते लगते हैं।'

'यही मैं भी देख रहा हूँ।'

'क्या बात है।'

'पता नहीं। पर कहते थे पुरानी बातें याद आ रही हैं।'

'तो......' वह कह नहीं सका। रोने लगा।

'कौन रोता है?' महाकवि का स्वर सुनाई दिया।

'कोई नहीं।' मलूक ने कहा।

'नहीं बेटा, सच कह।'

'नारायण है गुरुदेव!'

'उसे मेरे पास ले आ।'

दोनों गये। बैठे।

'तू क्यों रोया नारायण!'

'मुझे भय होता है।' नारायण कह उठा।

'क्यों? राम के रहते तुझे डर लगता है?' कवि ने कहा—'मुझे वचन दो। तुम दोनों वचन दो। प्रभु से ही जीवन पर्यन्त आस लगाये रहोगे। और किसी के भी सामने नहीं झुकोगे। वेद मार्ग पर चलने वाले संतों की सेवा करोगे। मुझे वचन दो बेटा!'

दोनों ने वचन दिया।

'भगवान!' तुलसीदास ने बुदबुदा कर कहा—'इनकी रक्षा करना। कलि से इनकी रक्षा करना।'

कुछ देर बाद दोनों बाहर चले गये। महाकवि चुपचाप ध्यान करते रहे। फिर उन्हें याद आने लगा।

तुलसीदास के सामने संसार शून्य की भाँति फैल गया। कोई सहारा नहीं रहा।

मन करता रत्ना के पास लौट जाये। पर फिर अहं कहता नहीं नहीं। वह अभिमानिनी स्त्री है। उसने तेरे प्रेम का अपमान किया है। दूसरा विचार आता। वह स्त्री है। माया है। कवि! तू कहां जाने की सोचता है! राम से ध्यान न लगा कर तूने एक स्त्री पर जीवन न्यौछावर कर दिया?

धिक्कार है तुझे धिक्कार है।

फिर कहाँ जाना है?

तुलसी! महाजनों के पथ पर चल। जीवन को नष्ट मत कर।

राम का सहारा ले। वही तेरा उद्धार करेगा। वही दीनों और अनाथों का रक्षक है। एकमात्र रक्षक है।

संयम प्रारम्भ हो गया।

'यात्री कहाँ जाओगे?'

'मुझे नहीं मालूम।'

'घर कहाँ है?'

'कहीं नहीं है ?'

'गिरस्ती हो ?'

'नहीं ।'

'तो फिर तुम्हारा कोई नहीं है ?'

'राम ही मेरा एक मात्र सहारा है ।'

'बैठ जाओ। कुछ खाओगे ?'

'नहीं ।'

'भूख लगी है ?'

'हाँ ।'

'तो फिर खाते क्यों नहीं ?'

भीतर जाकर वह आदमी परांठे ले आया ।

'लो खाओ ।'

तुलसी खाने लगा । कुछ देर बाद एक आदमी आया । पुकारा : पण्डित सालिगराम हैं ?

'हैं भई ! आ जाओ । अरे मनोहरदास ! तुम हो ?'

'हाँ ।'

'कहां चले गये थे ?'

'तारिपता गांव गया था ।'

'क्यों ?'

'वहाँ मेरे दूर के संबंधी रहते हैं ।' उसने एक लम्बी सांस ली और कहा : 'क्या कहूँ। यह संसार भी बड़ा विचित्र है ।'

'क्यों क्या हुआ ?'

'बात यह है कि वहाँ मेरे एक मित्र थे । उनका राजापुर में कुछ दिन पहले रहना शुरू हो गया था । वहां उन्होंने अपनी बेटी का एक होनहार ब्राह्मण से ब्याह कर दिया था । फिर वे अपने गाँव लौट आये थे ।'

'हूँ ।'

'बस उसके बाद एक दिन पति पत्नी में झगड़ा हो गया । स्त्री बाप के घर आ गई । दामाद कहीं चला गया । अब पाँच बरस बाद वह लड़की रत्ना

भी रो रो कर घुल घुल कर मर गई।'

तुलसी का खाना बन्द हो गया।

'तुम खाते क्यों नहीं ?' सालिगराम ने कहा, फिर जैसे मनोहरदास से परिचय कराया–'एक अतिथि हैं। मैं ले आया संग। वैराग्य सा हो गया है इन्हें, ऐसा लगता है।' फिर तुलसी से कहा—'अरे मरना जीना तो इस दुनिया में लगा ही रहता है। तुम क्यों दुख करते हो ? या तुम उसे जानते थे ?'

'नही, नहीं।' तुलसी ने कहा और जबर्दस्ती खाने की कोशिश करने लगा, पर कौर गले के नीचे नहीं उतर रहा था।

'हाँ जी !' सालिगराम ने कहा : 'फिर ?'

'फिर की न पूछो सालिगराम जी !' मनोहर दास ने कहा : 'रत्ना कविता बनाती। बड़ी चतुर रमणी थी। बड़ी सुन्दर थी और परम साध्वी थी।'

'क्यों नहीं ? क्यों नहीं ?'

'देखो भला। पति छोड़ गया तो कहने लगी—वे चले गये, पर वे तो अब संसार में ऊँचे उठ जायेंगे। एक न एक दिन वे जरूर बड़े महान बनेंगे !'

'हाँ !!'

'क्यों नहीं। उसका पति कवि था। कहती थी, मैंने ही अपने पाँव में अपने आप कुल्हाड़ी मार ली। वे बड़े कोमल हृदय के थे। परन्तु मेरी बात सह नहीं सके। बात यह थी कि वह काम से अन्धा हो गया था। रत्ना इसे सह नहीं पाई कि उसका पति उसके कारण अपना रास्ता छोड़ दे।'

'अरे तुम क्यों नहीं खाते ?' मनोहर दास ने फिर टोका।

तुलसी बैठा शून्य दृष्टि से आकाश की ओर देख रहा था। दोनों ने एक दूसरे की ओर देखकर सिर हिलाया।

मनोहर दास ने कहा : 'यह दुनिया भी बड़ी अजीब है।'

'हां ऽऽऽऽ....' सालिगराम ने लम्बी तान खींच कर कहा।

हठात् तुलसी ने कहा : 'मैं जाऊँगा।'

'कहाँ ?' सालिगराम चौंका।

'फिर अपनी यात्रा पर।'

'अब कहाँ जाओगे ?'

'मैं नहीं जानता।'

'तो कल जाओ न ?'

'नहीं मुझे राम बुला रहे हैं।'

वह दोनों चौंके।

'एक बात बता सकते हैं आप ?' तुलसी ने मनोहरदास की ओर देख कर पूछा।

'क्या ?'

'परिव्राजक को श्राद्ध करना होता है ?'

'क्यों नहीं ?'

'तो फिर मैं जाऊँगा। मुझे श्राद्ध करना है।'

'किसका ?'

'मेरी एक रिश्तेदार लगती थी। वह मर गई है।'

'तो चित्रकूट पास ही है वहाँ चले जाओ।'

'चित्रकूट! मैं वहीं जाऊँगा।' तुलसी ने कहा : 'मैं भूल गया था। बरसों से भटक रहा था, परन्तु अब फिर मुझे रास्ता मिल गया है। मुझे आगे बढ़ना है, आगे बढ़ना है।

'और आगे ! तो चारों धाम की कर लेना। बड़ा आनन्द रहेगा।

'आनन्द !' तुलसी ने धीरे से कहा—'वह आयेगा, वह आयेगा। कर्त्तव्य ही सबसे बड़ा आनन्द है।'

चित्रकूट के घाट पर तुलसी बैठा था। वह पत्नी का श्राद्ध कर चुका था। तो सचमुच रत्ना चली गई थी। और इतने दिन तुलसी ने क्या किया था ? कुछ नहीं। केवल भटकता रहा। वह रामनाम भी ठीक से नहीं ले सका। मन की वासनाएँ रुलाती रहीं। एक प्रकार की भ्रान्ति मन में भरती रहीं। परन्तु अब ? अब रत्ना नहीं रही। क्या उसकी अन्तिम इच्छा पूर्ण नहीं होगी ?

घाट पर एक व्यक्ति आ बैठा। उसके चारों ओर कुछ शूद्र आ बैठे। एक ने कहा : महाराज ! आप कुछ समझायें।

वह व्यक्ति जाने क्या क्या उपदेश देता रहा। जब वह स्वर उठा कर बोलने लगा। तुलसी चौंका। कौन ? आज चित्रकूट जैसे पवित्र स्थल में शूद्र उपदेश दे रहा है !

तुलसी उठा। कहा : तुम कौन हो ? क्या तुमको उपदेश देने का अधिकार है ?

उस व्यक्ति ने गर्व से कहा : क्यों नहीं है ?

'तुम ब्राह्मण हो ?'

'ब्राह्मण !' उस व्यक्ति ने कहा : 'जो ब्रह्म को जानता है वही ब्राह्मण है। समझे ?'

उसकी आँखें क्रोध से लाल लालसी दिखाई दे रही थीं। तुलसीदास चुप हो गया।

वह सोचने लगा।

तुलसी ! यह क्या हो रहा है ? यहाँ इतना अनाचार फैला हुआ है और तू अपने व्यक्तिगत सुख दुख में डूबा हुआ है ?

सोचते सोचते तुलसी वहीं लेट गया। उसने स्वप्न देखा। तुलसीदास बैठा चन्दन घिस रहा है। घाट पर वेद मार्ग पर चलने वाले संतों की भीड़ हो रही है। उस समय हनुमान आते हैं और तुलसीदास के सामने मुस्कराते हैं। दो बालक आते हैं। बड़ा बालक तुलसीदास के माथे पर चन्दन लगाता है। दोनों बालक चले जाते हैं। हनुमान हँसते हैं। और कहते हैं—

चित्रकूट के घाट पर
भई संतन की भीर
तुलसीदास चंदन घिसें
तिलक देत रघुबीर।

मोह टूट जाता है। तुलसी बिलख बिलख कर रो उठता है। हाय रघुबीर ! तुम आये और चले भी गये। मैं नहीं चेत सका।

'अलख निरंजन !' कठोर स्वर गूंज उठा।

तुलसी की आंख खुल गई।

'क्यों रोता है बच्चा!' एक जोगी ने कहा—'तू क्यों रोता है?'

तुलसी ने देखा जोगी भाँग सुलफे के नशे में मस्त था।

तुलसी बैठ गया।

'अरे बोलता नहीं?' जोगी ने कहा—'गोरखनाथ बाबा का स्मरण कर। सँब जंजाल जाल कट जायेगा। भव सागर सब पट जायेगा।'

तुलसी को घृणा हुई। वह जोगी बक रहा था। तुलसी उठ खड़ा हुआ और चल पड़ा।

कुछ देर बाद वह श्मशान के पास पहुँचा। वहाँ कई किसान किसी लाश को फूंकने आये थे। गांव वालों में बातें हो रही थीं।

एक कह रहा था: 'क्या करें? कर और बढ़ गया है।'

'क्या कहता है तू? बाल बच्चों के गले घोंट कर मार दें!'

'मार दे, किसे परवाह है।'

'पर ऐसा अन्याय तो पहले कभी नहीं हुआ था। हम तो समझे थे राजा टोडरमल के नाप के बाद सब चैन हो जायेगा, मगर यहाँ तो आये दिन इन ओहदेदारों के हुक्म बढ़ते ही चले जा रहे हैं।'

'कोई राजा ऐसा है ही नहीं। फिर मुगलों का सूरज तो चढ़ रहा है।'

'अरे सूरी मर गया है तभी न! हुँमायू तो काबुल छोड़कर भाग गया था।'

'हाँ हाँ तब राणा सांगा भी तो थे।'

'अब महाराणाप्रताप भी तो है?'

तुलसी चौंका। वह तो भूल ही गया था। परिस्थिति की गंभीरता समझ में आई। ऐसी मशहूर बातें हैं कि मामूली गाँव वाले तक जान गये हैं! परन्तु तुलसी ने किसी पर ध्यान ही नहीं दिया! रत्ना इसी को तो नहीं चाहती थी।

गुरु नरहर्य्यानंद महाराज कितनी बातें नहीं समझाते थे! तुलसी सिहर उठा। उसमें एक कुल बुलाहट पैदा हुई। वह एक नया जीवन चाह रहा था।

गांव वाले लौट चले।

तुलसी कुछ दूर पर चलने लगा।

एक ने कहा: तुम कौन हो महाराज!

'ब्राह्मण हूँ।'

'कौन से ब्राह्मण हो?'

'सरयूपारीण।'

'तो ठीक है।'

'क्यों?'

'बात यह है महाराज। आजकल जिसके जो मन में आता है, वही हो जाता है। हमारे यहाँ के नाई भी न्याथी ब्राह्मण हो गये हैं।'

'तुम रोकते नहीं?'

'हम क्या रोकेंगे? राजा चाहे तो भले रोक ले पर राजा परदेसी है, मुसलमान है, उसे क्या पड़ी। वह तो अपने पैसे से काम रखता है। मौका पड़ते ही लोगों को मुसलमान बना लिया जाता है।

तुलसी को झटका सा लगा।

उसने कहा: कलि आ गया है?

'कलि! यहाँ कोई धंधा ही नहीं रहा।'

'क्यों?'

'फ़सल होती है कि लूट होती है, राज है, बौहरा है।'

'पर राज्य तो धनी है।'

'लूट से कौन धनी नहीं हो जाता।'

'प्रजा राजा को अपना मानती है। मानलो कि तुमने अपना कोई राजा बना लिया, तो यह अधिकार तो नहीं है कि बाकी सबको वह बिना अपराध के कुचल दे।'

ग्रामीण चिंतित हो गये।

'इस सबका कारण क्या है?' तुलसी ने पूछा।

'चोरियाँ बढ़ गई हैं।'

'और राजा ध्यान नहीं देता। यही न?'

'हाँ जी।'

'तो तुम अपने अपने हाथ पाँव ठीक करो तो सबकी ही सारी समस्या हल हो जाये।'

'वह क्या ?'

तुलसी ने कहा : 'तुम भूल गये हो कि तुम किनकी संतान हो। तुम पवित्र हो, हिंदू मात्र एक ही है।'

'पर हिंदू तो आपस में लड़ते हैं !!'

'उनको एक होना पड़ेगा।'

'कैसे होगा वह ?'

'राम की भक्ति के बिना कुछ भी नहीं हो सकता। विश्वास रखो। मनुष्य से भी ऊपर एक शक्ति है। उसे जानते हो ?'

'क्या महाराज !'

'धर्माश्रम और आचार ठीक रखना ही। कोई भले ही जोगी और मुसलमान स्वीकार करले, पर उनके भीतर के एक घृणा ही निकलती रहती है। सारा देश ही भूखा मर रहा है।'

तुलसी की बात सुनकर दो ब्राह्मण युवक बाहर आ गये। एक मलूक था, एक नारायण ! उन्होंने तुलसी की ओर पग बढ़ाया और श्रद्धा से प्रणाम किया। बोले : महाराज आप हमारे साथ काशी चलिये।

'एक बार अवश्य चलें।' दूसरे ने कहा—'गुँसाई जी का अंतिम समय आ गया है।

तुलसी ने सोचकर कहा : चलो।

वे सब फिर चलने लगे।

तुलसी काशी में गुँसाई हो गया था। यहाँ उसका आदर होता। भोजन की सुविधा हो गई। वह पठन पाठन में तल्लीन रहने लगा। किंतु पांडित्य पीछा नहीं छोड़ता था। लोग सुख दुख की समस्याओं के हल लेकर आने लगे।

तुलसी ने रामाज्ञाप्रश्न बनाया।

प्रश्न देखने के लिये लोगों ने उसे धीरे धीरे अपना लिया।

किंतु क्या वह तुलसी के मन को संतोष दे सका ? नहीं ।

धर्म के लिये उसने क्या किया ? वह तो अन्य धर्म गुरुओं की भांति पेट पालन में लगा हुआ था । देश के लिये उद्धार की आवश्यकता थी । तुलसी नीति के दोहे बनाने लगा । उनसे वह उपदेश करता । राम के प्रति जो भक्ति थी, वह दोहों के स्फुटरूप में फूट फूट कर आकार धारण करने लगी ।

दार्शनिक चिंतन करने लगा । सगुण और निर्गुण की समस्या जटिलता धारण कर रही थी । तुलसी ने तर्क छोड़ा और राम को ही संजीवन समझा१ । निर्गुणयों को तुलसी ने राम का नाम जपने का उपदेश दिया २ । देश का दैन्य, दारिद्रय, विदेशी म्लेच्छों का अनाचार, देशी राजाओं का देश द्रोह और स्वार्थ, धर्म गद्दियों पर बैठे लोगों का रूढ़ियों की आड़ में अपना पेट पालना, निर्गुण मार्ग और योग संप्रदायों द्वारा ब्राह्मणवाद का विरोध, नीच जातियों की उच्छृंखलता, ब्राह्मणों का और वेदों का निरादर, यह सब तुलसी को व्याकुल करने लगे । वह सोचता । किस प्रकार फिर से मुक्ति का रास्ता निकले ?

ब्राह्मण श्रेष्ठ तो हैं किंतु क्या शूद्र भगवान के नहीं है ? नहीं वे भी हिंदू हैं । यदि अपने अपने वर्णानुसार लोग कर्म करें तो अवश्य ही सब में संगठन

---

१. हिय निर्गुन, नयनहिं सगुन
रसना नाम सुनाम,
मनहुँ पुरट संपुट लसत,
तुलसी ललित ललाम ।
सगुन ध्यान रुचि सरस नहिं,
निर्गुन मन ते दूरि,
तुलसी सुमिरहु राम को,
राम सजीवन मूरि ।

२. हम लखि, लखहि हमार,
लखि हम हमार के बीच
तुलसी अलखहि का लखहि ?
राम नाम जपु नीच ।

हो सकेगा और पृथ्वी पर धर्म को पालने वाले राजा का शासन हो सकेगा। शैवों और वैष्णवों के झगड़े उच्च वर्णों को निर्बल किया करते थे। तुलसी की समझ में यह व्यर्थ था। जो वेद को मानते हैं उन्हें आपस में लड़ने की जरूरत ही क्या है?

तुलसी उस विशाल मार्ग को देखता जिस पर शताब्दियों से संस्कृति अपने पग चिन्ह छोड़ती चली आ रही थी। तुलसी चाहता था किसी प्रकार यह सब ऐसे उपस्थित हो जाये कि सब लोग उसे आदरणीय समझ सकें, उससे परिचित हो सकें। ऋषियों की पवित्र वाणी फिर से प्रचारित हो सके।

तुलसी ने शूद्रों को उपदेश दिया कि ईश्वर तुम्हारा है। तुम्हें निश्चिन्त रहना चाहिये। म्लेच्छों के राज्य में यज्ञ तप नहीं हो सकते। रूढ़ियाँ पनपती हैं। सो फिर नाम ही जपो। नाम ही बहुत है। नाम ही सब कुछ है।

किंतु जनता इन उपदेशों से चेत नहीं सकी। यह नीरस वाकचातुर्य्य प्राण नहीं फूंक सका।

तुलसीदास का मन भीतर ही भीतर व्याकुल रहने लगा।

महाकवि सूरदास उस समय रुनकुते में छोटी सी झोंपड़ी में पड़े पड़े गाते थे। उन्हें गोसाँई विट्ठलनाथजी ने एक मन्दिर में पुजारी बना दिया था। सूर प्रातः से लेकर रात तक उस समय कृष्ण की जीवनचर्य्या के गीत गाया करते थे। उनका यश काशी पहुंचा। उनके गीतों को सुना कर भक्त लोग निर्गुणियों और जोगियों को चिढ़ाया करते थे। तुलसी ने भी उनके अमर गीत की एक नकल पढ़ी। मन को एक नया उजाला सा मिला। यह व्यक्ति कौन था? सुनते थे वह अपने हाथ से आँखें फोड़ कर अन्धा हो गया था। मन की वासनाएं मिटाने के लिये। तुलसी को साहस हुआ। वह तैयार हो गया कि वृन्दावन जाकर भक्त सूरदास के दर्शन कर सके जो धर्म की स्थापना के लिये उठ खड़ा हुआ है। उसका गीत प्राचीन धर्म से सरस है। वेदों के गौरव की उसमें प्रतिध्वनि है।

तुलसीदास वृन्दावन चल पड़े। उन दिनों उन्होंने कृष्ण गीतावली और गीतावली के पद रचे।

केवल इतना ही याद रहा है। जब तुलसीदास सूर से मिले तो असीम आनन्द और श्रद्धा हुई। स्वामी विट्ठलनाथ से मिले तो प्रणाम किया। फिर वे कृष्ण का दर्शन करने गये। ललित रूप में कृष्ण की मनोहारिणी छवि बनी थी। तुलसी ने देखा।

मन ने कहा : तुलसी! यह विष्णु ही है न!

हाँ यह उन्हीं का अवतार है।

महाकवि सूर ने इन्हीं की लीला गाई है?

हाँ। इन्हीं की तो।

सूर के गीतों से वेद विरोधी व्याकुल हो गये हैं न!

हाँ निश्चय।

परन्तु उससे नया जीवन अभी नहीं जागा।

क्या यही अंत है?

नहीं। यह तो लीलारंजन है।

तुझे क्या चाहिये?

मुझे धर्म की रक्षा के लिये धनुष बाण उठाने वाला चाहिये। वेद विरोध केवल निम्न जातियों से नहीं आया, उसका आधार म्लेच्छों के शासन में हैं।

परन्तु ब्रह्म तो सबसे परे अव्यक्त हैं न?

है, परन्तु यह लोक उसी का है। इस लोक के लिये वह बार बार अवतार लेकर आया है। और उसने रक्षा की है।

कृष्ण ने क्या नीचों का वध नहीं किया?

किया था, परन्तु कृष्ण के समय में बाँधवों का युद्ध था। आज वह परिस्थिति नहीं है। आज तो रावण के राज्य का सा हाल है। रावण ने जिस प्रकार यज्ञ, तप, धर्म, वेद का नाश करके गौ, देवता और ब्राह्मणों का विनाश

किया था, वैसे ही आज भी हो रहा है—आज वैसा ही पराक्रमी चाहिये। लोक के भगवान को भी लोक रंजन ही होना पड़ेगा। और हठात् तुलसी ने कृष्ण को हाथ जोड़कर कहा :—

कहा कहौं छवि आपकी
भले बने हौ नाथ,
तुलसी मस्तक तब नवै
धनुष बान लेओ हाथ।

काशी लौट कर तुलसी को विश्राम नहीं मिला। उन्होंने गुसांई का पद छोड़ दिया। जनेऊ उतार दिया। संन्यासी हो गये। वर्णाश्रम के अन्तिम आश्रम की मर्यादा को उन्होंने संभाल लिया। उस अवस्था में वह व्यक्ति वेद और धर्म, गौ ब्राह्मण और देवताओं की वंदना करते हुए भी जात पाँत से दूर हो जाता है। वह माँग कर खाता है। यह जरूर है कि वह म्लेच्छों और नीच जातियों के हाथ का नहीं खाता पीता। तुलसी ने अपने सारे व्यक्तिगत बंधन छोड़ दिये। और वे फिर यात्रा पर चल पड़े। गुसांई जीवन का वैभव उन्हें नहीं रोक सका।

कवि ने गाया—

कुस गात ललात जो रो रोटिन को,
घर बात घरे* खुरपा खरिया
तिन सोने के मेरु से ढेरु लहे
मन तो न भरो घर पै भरिया
तुलसी दुख दूनो दसा दुहूँ देखि,
किया मुख दारिद को करिया
तजि आस जो दास रघुप्पति को
दसरत्थ को दानि दया-दरिया।

* घर का सामान

जोगियों के द्वारा जब खतरा हुआ कि वे तुलसी को मारेंगे जब भी महाकवि विचलित नहीं हुए। उन्हें अपनी लगन थी। वे किसी से भी पराभूत नहीं थे। उन्होंने स्पष्ट कहा कि वे किसी की भी चिंता नहीं करते।

यात्रा चल रही थी।

कवि ने गाया—

को भरिहै हरि के रितये,
रितवै पुनि को हरि जो भरि है,
उथपै तेहि को जेहि राम थपै ?
थपिहै तेहि को हरि जौ टरि है ?
तुलसी यह जानि हिये अपने
सपने नहिं कालहु तें डरि है
कुमया कछु हानि न औरन की
जोपै जानकीनाथ मया करि है।
व्याल कराल, महाविष पावक,
मत्तगयंदहु के रद तोरे
सांसति संक चली, डरपे हुते
किंकर, ते करनी मुख मोरे
नेकु विषाद नहीं प्रहलादहिं,
कारन के हरि केवल हो रे
कौन की त्रास करै तुलसी
जो पै राखि है राम तौ मारिहै को रे ?

तुलसी की मस्ती अब मुखर हुई। वह निर्द्वंद्व हो उठे।

कृपा जिनकी कछु काज नहीं
न अकाज कछू जिनके मुख मोरे।
करैं तिनकी परवाहि ते जो
बिनु पूंछ बिषान फिरैं दिन दौरे।
तुलसी जेहि के रघुनाथ से नाथ,
समर्थ सु सेवत रीझत थोरे

कहा भव-भीर परी तेहि धौं
　　　　　　बिच रैं धरनी तिन सों तिन तोरे।×
कानन, भूधर, वार, बयारि,
　　　　　　महा विष, व्याधि, दवा अरि घेरे
संकट कोटि जहां तुलसी,
　　　　　　सुत मातु पिता हित बंधु न तेरे।
राखि हैं राम कृपालु तहाँ,
　　　　　　हनुमान से सेवक हैं जेहि केरे
नाक, रसातल, भूतल में
　　　　　　रघुनायक एक सहायक मेरे।

महाकवि जब चित्रकूट पहुंचे तब उनका यश इधर उधर लोगों में फैलने लगा था। परन्तु तुलसी दास के भीतर एक हलचल थी। वे अपने को पूर्ण और शांत अनुभव नहीं करते थे उन्हें लगता था जैसे अभी कुछ और है, और है, जो होना ही है, होना ही है........

अतलांत अंधकार छा रहा था। शीतल वायु अब तनिक नम सी होकर चल रही थी। दिन की धूप की गर्मी को रात्रि की शीतलता ने ढँक दिया था।

तुलसीदास आज उदास सा घूम रहा था।

वृद्ध का पांव कभी जल्दी जल्दी उठने लगता, फिर वह सोचने लगता।

अंधकार दूर दूर तक छाया हुआ था। नगर दिखाई नहीं देता था, केवल आकाश के पट पर एक काली परन्तु गहराई से घुली हुई सी अस्पष्ट रेखा सी दिखाई देती थी। उसकी ओर कवि ने आँखें उठा कर देखा।

मन ने प्रश्न किया : तुलसीदास ! तूने क्या किया ? इतना जीवन बीत गया। तूने इतने समय में क्या किया ? किसलिये मिला था तुझे मानव का

× नाता तोड़े हुए।

स्वरूप ? किसलिये तुझे ब्रह्मा ने ब्राह्मण बनाया । क्या किया तूने इस पवित्र भारत भूमि के लिये ?

सरयू गंभीर गति से बही चली जा रही थी । उसके कल कल निनाद में एक अजस्र मनोहारी संगीत था, जो मन के गह्वरों को भरता चला जा रहा था, परन्तु यह दाह कैसा था जो सिकता की भांति अपने फैलाव से डराने लगा था । कहाँ था इसका अंत !

जीवन के साठ वर्ष बीत गये । पत्तों की तरह काँपते हुए वर्ष सत्ता की टहनियों पर उगे और फिर झड़ गये और अनंत अज्ञात की मिट्टी में कहीं गल गये, खो गये । उनको तो अब फिर से बटोर कर नहीं लाया जा सकता न ? क्या आगे भी आने वाले क्षण ऐसे ही विनष्ट हो जायेंगे ?

तुलसीदास का उदास मन भाराक्रांत सा चिल्लाने लगा ।

उनके सामने चित्र से कांपने लगे । वे भूलना चाहते हैं पर भूल नहीं पाते । वेदना ही जीवन पर छा जाना चाहती है ।

और फिर रामराम कह कर दशरथ प्राण त्यागने लगे ।

कितनी वेदना थी । पिता का मर्म छिद रहा था । कोई साले देरहा था । माताओं ने क्या सोचा होगा । हृदय का टुकड़ा कैसे फेंक दिया गया था !!

तुलसी रोने लगे ।

जल का कलकल निनाद सुनकर कवि को सांत्वना हुई और मन में नया स्नेह उमड़ने लगा ।

यही है वह सरयू जिसमें राजा राम ने पांव धोये थे ! सरयू ! तू तो भगवान का स्पर्श करके पवित्र हो गई किंतु मेरा क्या होगा ? तुम कब मिलोगे ? कब होगा तुम्हारा पवित्र दर्शन !

तब फिर स्वप्न जागा ।

धुंधली आकृतियाँ सामने आईं । यह कौन है ? यह तो स्वयं पुरुषोत्तम राघव हैं । नमामि शरणागतवत्सल । नमामि हे त्रिभुवनजयी !

मर्यादा !! मुझे गौरव चाहिये ! पौरुष !! अनंत पराक्रमी !

आजानबाहो ! हे महाहनु ! वीर विशालाक्ष ! अदम्य गर्जन करो । ऐसा कि फिर दिशाओं में वही पुण्यमय जीवन प्रतिध्वनित होने लगे, जिसने इस

पवित्र वसुंधरा पर शाश्वत अभिमान जाग्रत किया था !

कहाँ है मर्यादा !!

ठहर जाओ मेरे उदासीन विचारो ! ठहर जाओ ! कौन बढ़ा जा रहा है । यह कौन निर्भय सा चला जा रहा है !

अरे ! दण्ड कारण्य में यह कौन जा रहा था !!

सहसा असंख्यों शस्त्र अंधकार में खड़खड़ाने लगे ।

विकराल अंधकार अट्टहास करने लगा ।

मारीच मारा गया !

वैदेही ! वैदेही !!

माता !! माता !!

तुलसीदास विचलित होकर पुकारने लगे ।

आकाश में हाहाकार मचने लगा ।

नहीं ! कोदण्ड पाणि ! जागो !!

मन के गौरव में से ऋषियों के से ज्वलंत आकार निकलने लगे । अमृत्यु ! अमृत्यु ! यही निनाद होने लगा ।

सर्वार्थस्वार्थ निरत-श्वान आज जीवन को खाने के लिये लोलुप हो उठे हैं और झपट्टा मार रहे हैं ।

लीला और माया ही नहीं, शक्ति का वह विस्फुरण चाहिये जो आकाश को पृथ्वी पर उतार लाये ।

कोदण्डपाणि ! तुम कहाँ हो ? तुम भक्तों को भूल कर कहाँ चले गये हो ? तुम्हें क्या दया नहीं आती !

उठो ! कवि उठो ! फिर पुकारो । ऐसी तपस्या करो कि इन्द्र का सिंहासन हिल उठे !

सरयू ! हे देवनदी ! उगल उठ ! तुझमें से ज्वालाएं क्यों नहीं फूट पड़तीं ?

शेषशायि नारायण को फिर भेज ! फिर एक बार अनिंद्य शोभा जागने दे ।

उठ ! अरी अयोध्या उठ ! म्लेच्छ निधन के लिये फिर तेरे पथों पर राजा-

राम का जयनिनाद होने लगे ।

तुलसी का मन विषण्ण हो गया । वह इधर उधर देखने लगे । चारों ओर फिर सूनापन छाने लगा ।

फिर यह पराजय क्यों छा रही है ?

सुहागिनी विधवा बन कर पड़ी है !

नारायण ! रामचन्द्र !! भगवन ! इस पृथ्वी पर कब आओगे ! अहे अनंत आकाश ! कब तक पृथ्वी पर यह अनाचार होते देख सकेगा ।

दुष्टों का विध्वंसन करने को भेज, भेज, उसी महावीर को भेज जिसने एक दिन दशशीश का विध्वंस किया था । ठहर जा रे कलि । ठहर जा ! समुद्र का भयानक विक्षोभ कुचलकर निर्वासित के चरण, अदम्य चरण सेतु पर चल पड़े थे ।

शेष सनातन का रूप हँस उठा ।

म्लेच्छों का वैभव लरजने लगा ।

भारत की पवित्र मेदिनी में फिर स्फुलिंग से जाग उठे । रावण का सिर कांपने लगा ।

भूख से लोग व्याकुल हो गये हैं । दारिद्र्य खाये जा रहा है प्रभु ! नारियाँ अपमानिता हैं । वर्ण टूट गये हैं । ब्राह्मणों का तेजस बुझ सा गया है । गंगा अपनी पवित्रता को खो रही है । और अनाचार ही अनाचार दिखाई देने लगा है । सामंत अपनी ही प्रजा को भून भून कर खा रहे हैं और विदेशी को खिला रहे हैं ।

और तुमने केवट को गले लगाया था, उसे अपना जाना था । यह ऐसा क्यों है ?

नागपाश से तुम्हारा लक्ष्मण अवरुद्ध हो गया है । हे राम ! तुम भी अचेत हो गये हो न ?

और शूद्र विद्रोह कर रहे हैं !

गरुड़ पक्षिराज ! आओ । कवि पुकारता है । मोहनिद्रा को तोड़ दो । तोड़दो इस विकराल निद्रा को ।

महाकवि तुलसी ने सिर उठाकर कहा : तुम्हें आना ही होगा प्रभु क्योंकि

आज और कोई सहारा नहीं रहा है। सहिष्णुता की पराकाष्ठा हो चुकी है। क्योंकि प्रजा भटक रही है। किसान हल लिये जाता है, धरती तोड़ता है, फसल उगाता है। परन्तु छठा भाग नहीं, उससे वे सब छीन ले जाते हैं। क्योंकि मर्यादा नहीं रही। राजा प्रजा पर मनमानी लूट करता है। कोई रोकने वाला नहीं। जबधर्म का ही बंधन अस्वीकृत कर दिया गया है तब भला चिंता ही किसकी रह जाती है। शासक अपनी विलास की भूख में कुमारी कन्याओं का अपहरण करते हैं। राजा पिता नहीं है, वह आज अत्याचार का प्रतीक हो गया है।

कैसे रक्षा हो सकेगी?

भण्ड और धूर्त निगमागम का नाश कर रहे हैं। वे किसी भी सत्य को नहीं मानते। तर्क कर करके वह प्राचीन ऋषियों की वाणी का तिरस्कार कर रहे हैं। क्या वे इतनी योग्यता रखते हैं?

कौन जानता है उनकी जाति? जाने किस अधिकार से वे जनता का धन खींच रहे हैं!

ब्राह्मण !!

अचानक लोहे पर लोहा टकराया। आकाश में जैसे बिजली सी कड़की और चारों ओर अनंत चक्र देदीप्यमान होकर दमदमाने लगा—भास्वर, आलोकित!

'अहे वेदों के उद्धारक!' कवि फुस फुसाया।

'फिर जाग! फिर जाग!' रोम रोम चिल्लाये।

'क्या तू सोता ही रहेगा?' शौर्य्य ने ठोकर दी।

'तू कौन है जानता है? तू पृथ्वी का देवता है। तू मनुष्यों में केहरी है। गर्जनकर। सटा फटकार कर उठ!' अंतरात्मा की प्रतिहिंसा ने ताल ठोंकी।

कवि ने आँखें फाड़ कर देखा।

'उठ! वेद पुरुष! गरज उठ।' कवि फुसफसा कर फिर बोला—'उठ! हिरण्यगर्भ! जातवेदस! आदिनाद के प्रतीक!! जाग! जाग!!

तब तुमुल संग्राम का अंधेरा छा गया। बाण लपलपातीं ज्वालाओं की जीभ से उसे चाटने लगे और फिर विस्फोट सा प्रतिध्वनित होने लगा। हाय हाय का आर्त नाद होने लगा। निशाचर आकाश में उड़ने लगे। नीचे से दो

तरुण बाणों की बौछार सी कर रहे थे। और ऊपर से कट कट कर शव गिरने लगे।

कवि अतंद्र सा देख कर रहा था। आज महानायक रक्षा कर रहे थे। राम लड़ रहे थे।

और तुलसीदास ने अंधकार से कहा : विध्वंस! विध्वंस!!

युद्ध हो रहा था! शवों से भूमि पट गई थी।

क्यों हुआ था यह संग्राम!!

क्योंकि माता जानकी को वह नीच रावण उठा ले गया था!

खींचो! फिर से लक्ष्मण रेख खींचो कवि! फिर कमनीय संस्कृति, पूज्या जननी की ओर अत्याचारी बढ़ रहा है। इस रेख के बाद भगवान स्वयं रक्षा करेंगे। मां! माँ पर अत्याचार!

कवि सिहर उठा।

यह दारुण अपमान!!

भीषण!!

नारायण! रक्त से पृथ्वी को फिर धोना पड़ेगा। और हठात् तुलसीदास को लगा कि समस्त अयोध्या मंगल वाद्यों के स्वरों से अभिभूत हो गई।

ब्राह्मणों के अभयंकर मंत्रों से अग्नि साकार होकर उठा।

और फिर कुछ याद नहीं रहा।

असंख्य प्रजा रोने लगी।

तुलसी का हृदय फटने लगा।

राम! राम!! तुम कहाँ जा रहे हो!!

हे महानायक!!

उस समय दिशाएं ललकारने लगीं : राम! राम!!

वही राज्य लाना होगा।

वही राजा राम का शासन लाना होगा।

अन्धकार स्तब्ध हो गया था। चारों ओर वायु का श्वास जैसे अवरुद्ध हो गया था।

किंतु आज तुलसी आत्मविजय करके बैठे थे, कोई भय शेष नहीं रहा था।

सरयू की ओर महाकवि ने हाथ उठाया और तब गुरुदेव नरहरि की छाया अंतराल में से मानों उठने लगी और पुकारने लगी : तुलसी, तुलसी !

तुलसी उठ खड़े हुए। कहा : गुरुदेव !! आज्ञा !!

'तू सो रहा है अरे जाग उठ ! जाग उठ !!'

मैं जागूंगा गुरुदेव ! मैं सदैव ही सोता हुआ नहीं रहूंगा। आज मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि अभयंकर निनाद करूंगा।

फिर कहा : तू साक्षी है। सरयू तू साक्षी है ! तू आज मेरी बात सुन रही है !

'माता सरस्वती !' कवि ने कहा—'आज मुझे फिर चेतना का आलोक दे जननी ! तू मुझे बल दे ! इस धर्मच्युत देश के लिए बल दे, ताकि सोये हुये फिर से सन्नद्ध होकर जाग्रत हो सकें। प्रजा के उद्धार, वर्णाश्रम की स्थापना, म्लेच्छों के पराभव, और गौ ब्राह्मण वेद की रक्षा के लिये शक्ति दे !

तब अनन्त नील व्योम में सोने की भांति चमकता हुआ एक विशाल रूप उठ खड़ा हुआ। वह स्फूर्ति से फड़क रहा था। उसके मुख से हुंकार फूट रही थी।

'हे मारुत् ! आओ ! प्रभुचर्चा करें।' तुलसीदास आनन्द से पुकार उठे।

मारुत ने आशीर्वाद दिया।

'मैं तुम्हारी वंदना करता हूँ।' कवि ने कहा—'हे ब्रह्मचारी ! सावधान ! कलि को दबाये रखना !'

मारुत ने भुजदण्ड फड़काये।

'देखते हो लंका धू धू करके जल रही है !' कवि ने कहा। 'धूंआ ही धूंआ फैल गया है। मैं इस अंधकार को तोड़ कर भाषा में काव्य लिखूंगा। भाषा में गाऊंगा।'

भाषा !! भाषा में लिखेगा तू !! पंडित छोड़ देंगे ? मूर्ख !! वे जड़ हैं।

मानों नरहरि ने कहा : वे गतिहीन हैं। उनके लिए नहीं, तू वेद के प्रति, सनातन धर्म के प्रति उत्तरदायी है""देख अग्नि परीक्षा है। इसमें कूद। सफल होकर निकल। वह कौन थी जानता है ? पावन वैदेही वसुंधरा

की पुत्री थी। ज्वलंत पुण्य सी जानकी मुस्कराई थी न तब?

'मैं लिखूंगा, मैं लिखूंगा'—तुलसी पुकार उठे—'मैं जनता के कानों में राम का पवित्र जीवन गुंजाऊंगा। उसको सुन कर प्रजा का भय दूर हो जायेगा।

और तुलसीदास रात के सन्नाटे में गाने लगे—

प्रसन्नता या न गताभिषेकत
स्तथा न मम्ले वनवास दुःखतः।
मुखाम्बुज श्री रघुनन्दनस्य मे
सदास्तु सा मञ्जुलमङ्गलप्रदा॥
नीलाम्बुज श्यामल कोमलाङ्गं
सीता समारोपितवाम भागम्
पाणौ महासायक चारुचापं
नमामि रामं रघुवंशनाथम्।
श्री गुरु चरन सरोज रज
निज मन मुकुरु सुधारि
बरनउँ रघुबर बिमल जसु
जो दायक फल चारि।

जबते राम ब्याहि घर आये। नित नव मङ्गल मोद बधाए॥
भुवन चारिदस भूधर भारी। सुकृत मेघ बरषहिं सुखकारी॥
रिधि सिधि संपति नदी सुहाई। उमग अवध अंबुधि कहुँ आई॥

और वे तुरंत दीप जला कर लिखने बैठ गये। आज राम नवमी थी। अयोध्या में सैकड़ों वर्षों बाद राम की गाथा फिर लिखी जाने लगी। तुलसीदास पर आवेश सा छा गया था। राम का नाम सुनते थे तो अङ्ग अङ्ग पुलकित हो उठता था।

कैसी थी तब प्रजा! यही तो है वह भूमि, वह पवित्र भूमि! कैसा था तब

हमारा राजा ? कितना प्रेम करती थी उससे तब प्रजा ! तुलसी लिखने लगे—

मनिगन पुर नर नारि सुजाती । सुचि अमोल सुन्दर सब भाँति ।
कहि न जाइ कछु नगर विभूती । जनु एतिनिअ विरंचि करतूती ॥
सब विधि सब पुर लोग सुखारी । रामचन्द मुख चंदु निहारी ॥
मुदित मातु सब सखी सहेली । फलित विलोकि मनोरथ बेलो ॥
राम रूप गुन सील सुभाऊ । प्रमुदित होइ देखि सुनिराऊ ॥

और तुलसी आगे नहीं लिख सके। विभोर हो गये । सोचते सोचते वे वहीं सो गये ।

प्रातःकाल उठे तो नया जीवन जाग रहा था । आज के प्रभात में एक नया ही संदेश था, जैसे जीवन को अपना उद्देश्य मिल गया था । अब तुलसी के जीवन की सार्थकता प्रारम्भ हो गई थी ।

तुलसीदास को भी याद आया । वे उस समय साठ वर्ष के थे ।

'प्रभु !' उन्होंने दीन स्वर से कहा—'कहीं मुझे कलि समाप्त न कर दे । तुम्हारी विरुदावली गाता हूँ, वृद्ध हो गया हूँ । मुझे संसार के लिये, गौ ब्राह्मण वेद के लिये शक्ति दो कि मैं इस महान और कठिनतम कार्य्य को पूर्ण कर सकूँ । महाराजाधिराज ! मुझे दासत्व से वंचित नहीं करो । तुम्हारे दर्बार में मेरी बात आज ठुकराई नहीं जा सकेगी । मैं तुम्हारे चरणों के प्रताप के बारे में गाऊँ, तो क्या तुम मुझे कलि के हाथों पराजित होते देख सकोगे !

दिन और रात एक हो गये ।

कवि एक नया आदर्श शताब्दियों के बाद प्रस्तुत कर रहा था ।

वे काशी आ गये ।

जिस प्रकार प्राचीन काल में ब्राह्मण शास्त्र, पुराण बनाते थे उसी प्रकार महाकवि सारे निगमागम का निचोड़ भर रहे थे ।

पहले अयोध्याकाण्ड समाप्त हुआ । फिर युद्ध काण्ड तक वे लिखते चले गये । अन्त में उन्होंने उत्तरकाण्ड लिखा जिसमें रामराज्य का महामहिमन्त स्वप्न जाग उठा । उसके बाद कवि ने आदिकाण्ड लिखा । इस आदिकाण्ड (बालकाण्ड) में कवि ने तत्कालीन उच्चवर्ण के कवियों को चुनौती दी कि देखो मैं किसी राजा का आश्रित नहीं हूँ । मैंने यह काव्य स्वान्तः सुखाय लिखा है ।

नाना पुराण निगमागम सम्मतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्य तोऽपि ।
स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा—
भाषा निबंधमतिमञ्जलमातनोति ॥

यह राजा तो म्लेच्छों के सामने सिर झुकाये बैठे हैं।

दो वर्ष बीत गये ।

काव्य समाप्त हो गया ।

तुलसी ने मन्दिर में भगवान के सामने उस काव्य को रख दिया और दण्डवत करके कहा : प्रभु ! इस दीन को आपने ही इतनी शक्ति दी थी, क्योंकि आपको यही स्वीकृत था ! हे राजाओं के राजा ! मुझे बल दो कि लोक में इसका पाठ हो और आपकी पवित्र कीर्ति घर घर में व्याप्त हो सके ।

लगा राम मुस्करा रहे थे ।

तुलसी लौट आये । आज उन्होंने अन्धकार में ही हाथ उठा कर कहा : गुरुदेव !!

वह नरिहरि स्वामी को याद कर रहे थे !

वे कहते रहे : मैंने आपका स्वप्न पूर्ण करने का यत्न किया है गुरुदेव ! आशीर्वाद दें ।

आज मन का भार हल्का हो गया था । वे बैठ गये ।

मन के किसी कोने से किसी ने झाँका ।

'कौन है ?' वे अपने आपसे पूछ बैठे ।

'मैं हूँ रत्ना !'

'रत्ना !! अब क्यों आई हो ?'

'वह देखने आई हूँ जिसके लिये आपको मैंने अपना वर चुना था । मेरी सत्ता से आप अपनी महानता को भूल गये थे । मैंने अपनी बलि देकर आपको फिर महान पंथ पर खड़ा कर दिया । आपको मुझ पर क्रोध तो नहीं है ?'

'नहीं रत्ना ! तुलसीदास कुछ नहीं है, वह तो केवल रत्ना के शब्दों का चमत्कार है ।'

'तो मैं जाऊँ ?'

'जाओ ! मन आज तृप्त है ।'

अंधेरी उतर आई। और तुलसीदास ने आज आँखें बन्द की तो लगा रघुनाथ धनुष लेकर आकाश से पृथ्वी पर उतरते आ रहे हैं और चारों ओर वेदघोष हो रहा है।

देखा भोर हो गई थी। मन्दिरों के घंटे बजने लगे थे।

भीड़ें झूम रही थीं। कथा हो रही थी। वृद्ध तुलसी रामचरितमानस सुना रहे थे। पंडितों की संस्कृत धरी रह गई। लोगों को ठगने के लाले पड़ गये थे। तुलसी पुकार रहा था: पृथ्वी के देवता ब्राह्मण ही रक्षक हैं। उनका सम्मान करो। राजा राम के राज्य को लौटा लाओ! परन्तु यह राजा विदेशी म्लेच्छों के दास हैं। यह रूढ़िवादी तो ब्राह्मण धर्म की रक्षा नहीं कर सके हैं। उठो! ब्राह्मणो! क्षत्रियो! वैश्यो और शूद्रो! एक हो जाओ! धर्म के लिये एक हो जाओ!

सत्ताधारी चौंकने लगे।

ब्राह्मणों ने पुकार उठाई: तुलसी वेद के धर्म को गिरा रहा है। वह भाषा में धर्म सुना रहा है।

परन्तु जनता ने एक स्वर से निर्णय दिया। तुलसी धर्म रक्षक है। धर्म चारों वर्णों का है।

राम चरितमानस वाल्मीकि रामायण से भारी पड़ने लगी और रूढ़िवादी ब्राह्मण धीरे धीरे मत बदलने लगे।

वृद्ध तुलसी दास इतने ही से शान्त न हुए। उन्होंने काशी को खण्डों में बाँटा। एक भाग लंका बना, एक अयोध्या और इसी प्रकार भिन्न स्थानों के भिन्न भिन्न नाम रखे गये। और सारा महानगर रामलीला करने लगा।

वेद मार्ग को मानने वाले राम और शिव का भेद भूल गये थे। दोनों का वेद ही पूज्य है तो लड़ें क्यों?

तुलसी की शिवस्तुति विप्र ने गाई थी और वह भी भाषा में नहीं, संस्कृत में। मन्दिरों में गूंजने लगा—

नमामीशमीशान निर्वाण रूपं
विभुं व्यापकं ब्रह्मवेद स्वरूपम्
अजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं
चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहम्

सारी काशी में जैसे नया ज्वार आ गया था।

संध्या को कवि सुनाता। दिन में मानस की असंख्य प्रतियाँ बनाईं जातीं और वे भारत भर में भेजी जाने लगीं। तुलसी का नाम फैलने लगा।

कथा हो रही थी। चार पाँच आदमियों का दल आगे बढ़ा। उन्होंने तुलसी को प्रणाम किया। असंख्य प्रजा बैठी थी। नर नारी विनीत थे।

दल के एक व्यक्ति ने कहा: महाराज! काशीराज आपके दर्शन करना चाहते हैं!

दूसरे ने कहा: चलें महाराज!

तुलसी हँसे। कहा: कहाँ चलूँ वत्स! काशी के कोतवाल की आज्ञा लाये हो?

'महाराज! स्वयं काशीराज उधर हाथी पर उपस्थित हैं।

'काशीराज!!' तुलसी ने कहा—'प्रबंधक कहो वत्स! काशी के राजा तो जगत विजयी राम हैं। इस काशी के कोतवाल शंकर हैं। मैं तो वेद पुराण और सब जगह यही सुनता आ रहा हूँ। तुम किसकी बात कर रहे हो? देखते हो। राजा राम का पवित्र नाम सुनने को सब वर्णों की देव गौ ब्राह्मण और वेद रक्षक प्रजा बैठी है। इस समय मैं कहाँ चलूं? राजा राम से बड़ा कौन है? मैं किसी पृथ्वी के राजा को सिर नहीं झुकाता।'

भीड़ ने भीषण जयजयकार किया। उस समय दोनों हाथ उठाये भीड़ में काशीराज दिखाई दिये। वे चिल्लाये: तुलसीदास की जय!! महाकवि तुलसीदास की जय!!

जयध्वनि से वाराणसी प्रतिध्वनि होने लगी।

काशीराज ने कहा : उद्धार करो हे परम भगवद् भक्त। लोक का कल्याण करो! धर्म की स्थापना करो!

और वे भीड़ के आगे बैठ गये।

तुलसी ने कथा फिर प्रारंभ की।

माता का प्रेम, राज्यों की नीतियाँ, अत्याचारी का दंभ, मर्यादा का गौरव, एक एक करके उस विदलित समाज को पुराने आदर्शों के झोंकों में झुलाने लगे। यह एक ठोस दृश्य था! राजा, प्रजा, ऊँच, नीच, नारी, माता, पिता धर्म, वेद, सबका निरूपण था। प्रजा को साहस मिला।

गाँवों में कथा फैलने लगी। निगमागम की संपत्ति ग्रामीणोंमें पहुँच गई। ब्राह्मण ने फिर भारत को विदेशी संस्कृति के विरुद्ध जाग्रत किया था, और वेद विरोधियों को कुचल कर रख दिया था।

कथा समाप्त हो गई।

काशीराज ने पुकारा : तुलसीदास कलियुग के बाल्मीकि हैं। महाराज! राजा प्रजा को भूल गये, राजा और प्रजा धर्म को भूल गये, आपने फिर से सबको जगा दिया। आपने सोते हुए लोक को फिर से उठने को बाध्य कर दिया। मैंने सुना था आप धर्म नाश कर रहे हैं। परन्तु आप तो धर्म के एक मात्र रक्षक हैं!

तुलसी ने मुस्करा कर कहा : काशिराज!

> धरम के सेतु, जगमङ्गल के हेतु,
> भूमि भार हरिबे को अवतार लियो नर को,
> नीति औ प्रतीति-प्रीति पाल चालि प्रभु मान,
> लोक वेद राखिबे को पन रघुवर को।
> बानर विभीषण की ओर के कनावड़े हैं
> सो प्रसंग सुने अंग जरै अनुचर को,
> राखे रीति आपनी जो होई सोई कीजै, बलि,
> तुलसी तिहारो घर जायउ है घर को!

तब शिष्य नारायण ने सुनाया था—

> आरत पालु कृपालु जो राम, जेही सुमिरे तेहि को तहँ ठाढ़े।
> नामप्रताप महा महिमा, अकरे किये खोटेउ, छोटेउ बाढ़े॥

सेवक एक तें एक अनेक भए तुलसी तिहुं तापन डाढ़े।
प्रेम बदौं प्रहलादहि को जिन पाहन तें परमेश्वर काढ़े!

सचमुच पत्थर में से परमेश्वर निकलता दीख रहा था। काशिराज और काशीवासियों की वह भीड़, सब उस समय महामुनि तुलसी को दण्डवत करते हुए जयजयकार करने लगे।

महाकवि तुलसीदास का गौरव मिथिला में गूंजने लगा। वे यात्रा पर निकले थे। उनकी कथा सुनने असंख्य प्रजा टूटती।

नैमिषारण्य, अयोध्या, चित्रकूट आदि में वे जागरण का संदेशा गुंजाते घूम रहे थे।

लोगों में चर्चा थी।

तुलसी ने स्वान्तःसुखाय काव्य लिखा। केशवदास को उन्होंने दूसरे राजाओं की चाकरी में देखा तो मिलने से इन्कार कर दिया। जब केशव ने राजा राम का गुण गाया तो मिले।

निर्गुणिया मलूक दास ने राम का विरोध छोड़ा। वेद मार्ग के सामने सिर झुका दिया।

राजा टोडरमल ने राजा बीरबल के बारे में पूछा तो महाकवि ने स्पष्ट कहा: वह चतुर है, पर अपने को बेच चुका है। क्यों अपने को खो रहा है! यह सुनते ही टोडरमल चुपचाप चला गया। वैसे वह उनका मित्र था।

हिन्दू धर्म को आदर की दृष्टि से देखने वाला कवि अब्दुर्रहीमखानखाना भी तुलसी की प्रसन्नता में प्रसन्न रहता था।

गरीब किसानों की भीड़ें तुलसी के दर्शन के लिये टूटने लगीं। वे हिंदू थे। उन पर शासन अत्याचार कर रहा था। उन पर उस शासन के पिठ्ठू सामंत थे। तुलसी ने स्पष्ट कहा—राम के दर्बार में माँगो! यह राजा क्या देंगे? यह धर्म के प्रतिपालक नहीं हैं।

जनता में राजाराम के पवित्र राज्य की कल्पना जागने लगी। तुलसी को

लोग कंधों पर लेकर घूमने लगे। और कवि इस सम्मान को पाकर मन ही मन व्याकुल हो उठा। वह तो संसार त्यागी संन्यासी था। कल तक लोग तरह तरह के नाम देते थे। यहाँ तक कि रूढ़िवादी ब्राह्मण, जो भाषा के माध्यमसे जनता तक नहीं पहुँचना चाहते थे, अपनी शृंखलाओं में बँधे हुए देश और धर्म का नाश कर रहे थे, वे पहले गाली देते थे। तुलसी ने कहा था—

मेरे जाति पाँति, न चहौं काहू की जाति पाँति,
मेरे कोऊ काम को, न हौं काहू के काम को।
लोक परलोक रघुनाथ ही के हाथ सब,
भारी है भरोसो तुलसी के एक नाम को।
अति ही अयाने उपखानो नहिं बूझैं लोग,
'साह ही को गोत गोत होत है गुलाम को।'
साधु कै असाधु, कै भलो कै पोच, सोच कहा,
का काहू के द्वार परौं, जो हौं सो हौं राम को।

वह किसी के द्वार पर नहीं गया। विरोध सहता गया। उधर मुगलों का अतिचार बढ़ता गया। हिंदू एक होते गये। तुलसी के वर्णाश्रम धर्म की स्थापना की ओर लोग अधिक आकर्षित होने लगे। और अब!

रामगुलाम का यह आदर!!

कवि राम के सामने श्रद्धा से झुक गया।

वर्णाश्रम का विरोध करने में अनेक संप्रदाय उठे थे। जाति व्यवस्था टूट रही थी। म्लेच्छों का कुशासन था। ब्राह्मण ही डूब रहे थे। और आज! वर्णाश्रम की ओर लोग जाग रहे थे। सारे हिंदू एक ओर हो रहे थे। ब्राह्मण अब फिर एक बार प्रजा का सङ्गठन कर रहे थे।

लोगों में गूंजने लगा—

बेद पुरान बिहाइ× सुपंथ
कुमारग कोटि कुचाल चली है।
काल कराल नृपाल कृपालन
राम समाज बड़ोई छली छली है।
वर्न बिभाग न आस्रम धर्म,

× छोड़कर

दुनी दुख-दोष-दरिद्र-दली है,
स्वारथ को परमारथ को कलि
राम को नाम-प्रताप बली है।

जहां गोरखनाथ ने भक्ति भगा कर वर्णाश्रम धर्म का खण्डन करके जोगी मार्ग चलाया था, वहाँ अब जोगी रूढ़ियों में फँस गये थे। पहले ही तुलसी ने पुकार उठाई थी—यह मार्ग वेद विरोधी है। इसको त्याग दो।

परन्तु आज तुलसी को लोग महामुनि कहते थे—कवि को अपना बचपन याद आया और आज से तुलना की।

वह गा उठा—

जाति के, सुजाति के, कुजाति, पेटागि बस,
खाए टूट सबके बिदित बात दुनीसो।
मानस वचन काय किए पाप सति भाय,
राम को कहात दास दगाबाज पुनीसो।
राम नाम को प्रभाउ, पाउ महिमा प्रताप,
तुलसी से जग मनियत महामुनीसो।
अति ही अभागा अनुरागत न राम पद,
मूढ़ि ऐतो बड़ो अचरज देखि सुनीसो।
जायो कुल मङ्गन बधावनो बजाओ सुनि-
भयो परिताप पाप जननी जनक को,
बारे में ललात बिललात द्वार द्वार दीन,
जानत हो चारि फल चारिही चनक को।
तुलसी सो साहिब समर्थ को सुसेवक है,
सुनत सिहात सोच बिधि हू गनक को।
नाम, राम! रावरो सयानो किधौं बावरो,
जो करत गिरी तें गरु तृन ते तनक को।

और वह उसी प्राचीन ब्राह्मण परम्परा में था, जो धन हीन रहने वाले समझे जाते थे, परन्तु जिनको देख कर संसार सिर झुकाता था। परन्तु आज सम्राट-मोग़ल-म्लेच्छ!! वह तो धर्म की वैदिक महिमा का विरोधी था।

अन्त में महाकवि काशी आ गये।

मीन की सनचरी आई थी। हाहाकार मच रहा था। महामारी से लोग मर रहे थे। भीड़ें गरीब थीं, मौत सिर पर झूल रही थी। महाकवि जिधर देखते उधर ही श्मशान का सा धूंआ उठता हुआ दिखाई देता। हाहा करतीं छाती पीटती नारियाँ, पथ पर अनाथ पड़े हुये बालक, और वृद्धों के झुके हुए सिर देख कर लगा कि अब सर्वनाश हो जायेगा। लाशें गंगा में फेंकी जा रही थीं।

और मुगल साम्राज्य का वैभव इन शवों के अम्बार पर पल रहा था।

महाकवि ने रोते हुए राम के सामने पुकारा : प्रभु यह क्या हो रहा है। किसान को खेती नहीं रही, व्यापारी को व्यापार नहीं रहा। कलि ने सब चौपट कर दिया है। म्लेच्छों का मदांध शासन अपने अत्याचार में मस्त हो रहा है। कौन करेगा इस देश की रक्षा। धर्म का नाश कौन रोकेगा प्रभु! आपने रावण को मारा था, इस कलि को नहीं मारेंगे?

तब कवि को लगा। फिर लगा।

यह सब क्यों है? क्योंकि लोगों ने धर्म, वर्णाश्रम और वेद का मार्ग छोड़ दिया है।

कवि ने लिखा—

> निपट बसेरे अघ, औगुन घनेरे नर,
> नारिउ अनेरे जगदंब चेरी तेरे हैं,
> दारिदी दुखारी देखि भूसुर भिखारी × भीरु
> लोभ मोह काम कोह कलिमल घेरे हैं।
> लोक रीति राखी, राम साखी बामदेव जान,
> जन की बिनति मानि मातु कही—'मेरे हैं।'
> महामारी महेसानि महिमा की खानि, मोद

× ब्राह्मण भिखारी और कायर हो गये हैं।

मंगल की रासि, दास कासी-बासी तेरे हैं।

सब ही दुखी हैं। पापों का फल पा रहे हैं—

लोगन के पाप; कैधों सिद्ध सुरसाप, कैधों
काल के प्रताप कासी तिहूँ तापतई है।
ऊँचे, नीचे, बीच के, धनिक रंक राजाराम*
हठलि बजाय करि डोठि पीठि दई है।
देवता निहोरे महामारिन्ह सों कर जोरे,
भोरानाथ जानि भोरे आपनी सी ठई है,
करुनानिधान हनुमान वीर बलवान
जस रासि जहाँ तहाँ तैं ही लूट लई है।

उस हाहाकार में कवि का मन भगवान से देश में धर्म की विजय के लिये पुकार रहा था।

हे हनुमान! तुम रक्षा करो। राम की बिगड़ी तुमने ही सुधारी थी। देवता दयालु नहीं है। राजा + कृपालु नहीं है। बनारस में अनीति बढ़ती चली जा रही है—

संकर-सहर सर, नरनारि बारिचर,
बिकल सकल महामारी माँजा भई है।
उछरत उतरात हहरात मरि जात,
भभरि भगत, जल थल मीचु मई है।
देव न दयालु महिपाल न कृपालुचित,
बारानसी बाढ़ति अनीति नित नई है।
पाहि रघुराज, पाहि कपिराज रामदूत
राम हू की बिगरी तुहीं सुधारि लई है।

वेद धर्म दूर चले गये! कहाँ से आ गये ये सामंत! यह तो पुराने धर्म के रक्षक नहीं हैं! यह तो भूमि चोर हैं। भूमि चोर! किसानों से जमीन छीनने वाले!! म्लेच्छ और उनके दास हिंदू राजा सामंत!! भूमिचोर राजा बन गये

---

* तुलसी की वेदना सब के लिये है। यह प्रार्थना म्लेच्छों का परोक्ष विरोध है। सभी हिंदू एक प्रकार से दुखी थे।

+ राजा!! कौन था? मुगल सम्राट! तुलसी के धर्म विरोधी म्लेच्छ।

हैं ! जो कल तक इस भूमि के शासक नहीं थे, वे ही अत्याचार कर रहे हैं !!

एक तो कराल कलि काल सूल मूल तामें,
कोढ़ में की खाजु सी सनीचरी है मीन की।
वेद धर्म दूरि गये, भूमिचोर भूप भए,
साधु सीद्यमान जानि रीति पाप-पीन की।
दूबरे को दूसरो न द्वार, राम दया-धाम !
रावरी ही गति बल--बिभव--बिहीन की,
लागैगी पै लाज वा बिराजमान बिरुदहि,
महाराज आजु जौन देत दादि दीन की।

हे राम ! वर्णाश्रम छोड़ देने के अपराध में शंकर ने प्रजा को दण्ड दिया था, परन्तु तुमने रक्षा कर दी—

आश्रम बरन कलि--बिवस बिकल भये,
निज निज मरजाद मोटरी सी डार दी।
संकर सरोष महामारि ही तें जानियत,
साहिब सरोष दुनी दीन दीन दारदी।
नारि नर आरत पुकारत, सुनै न कोऊ
काहू देवतिनि मिलि मोटी मूठि मार दी।
तुलसी सभीत-पाल सुमिरे कृपालु राम,
समय सुकरुना सराहि सनकार दी।

मीन की सनीचर घट चली, बीत चली। उजाड़ काशी में फिर लोग जागने लगे। तुलसी पुकारता था : जागो। फिर वर्णाश्रम के पथ पर चलो। राजाराम की दया से बच गये हो। उठो ! वेद के मार्ग पर चलो। कलि कुचाल का त्याग करो ! अपनी सत्ता को पददलित देख कर अपने आपको खोओ नहीं।

और काशी में लोग—धनी--दरिद्र--उसके पीछे होने लगे। वह धनुष धारण करने वाले राम के पवित्र राज्य का स्वप्न जगाता हुआ पुराने धर्म की मर्यादा जगाने लगा। अवैदिक संप्रदाय सिकुड़ कर चुप हो गये। उस समय मुगल वैभव के शोषण ने धनी दरिद्र हिंदुओं को जगह जगह एक हो जाने के लिये प्रेरणा दी थी।

गंगा तीर पर तुलसी घूम रहे थे, धीरे धीरे।

हठात् एक भयानक रोदन गूंज उठा।

'कौन ?' वृद्ध कवि ने पूछा था।

'मैं हूं।' ब्राह्मणी गौरा रो पड़ी। उसके पीछे उसके पति के शव को लिये कुछ उदास से व्यक्ति खड़े थे।

'कौन गौरा बेटी ? क्या हुआ ? यह कौन है ?'

शव नहीं बोला। केवल ब्राह्मणी रोई।

'तेरा पति कल्याण !!' कवि ने कांपते कण्ठ से पूछा।

विधवा चिल्लाई: 'बाबा ! लोग कहते हैं तुम भगवान से बात करते हो। मेरे पति को जिलादो बाबा ! वह भूख से मर गया है।'

तुलसी का हृदय फटने लगा।

काशी में ब्राह्मण अपनी युवती स्त्री को विधवा बनाकर भूख से मर गया है। क्या धर्म निःशेष हो गया है !! क्या सुन रहे हैं वे !!

पूरा मानस लिखा ! जन जन में प्रबोध हुआ परन्तु कलि का प्रहार निरंतर बढ़ रहा है !!

वे स्तब्ध खड़े रहे। विधवा का हाहाकार गूंज रहा था।

'बाबा ! दया करो ! मेरे पति को जिलादो।'

कैसी ममता का आवेश था !

तुलसी जिलादे !!

कैसे जिलादे !!!

किंतु जिलाना ही होगा !!!

कहा: 'कल आना गौरा। कल तेरा पति जी उठेगा। लेकिन एक काम करना होगा !!'

'बाबा !!' स्त्री आनन्द से चिल्ला उठी।

तुलसी ने धीरे से कहा: 'भगवान के काशी में जितने मन्दिर हैं उन सब में

से प्रसाद ले आ और फिर एक पीले रंग का कफ़न लेआ जिसे ऐसे घर से लेकर आना होगा जहाँ कभी मृत्यु नहीं हुई हो।'

विधवा चली गई। लोग रो पड़े।

रात को तुलसी राम की मूर्त्ति के सामने बैठ कर रोने लगा। कितनी दारुण थी वह व्याकुलता !!

प्रभु ! यह क्या है ?

यह कलि का ताण्डव क्यों हो रहा है !!

अंधकार में फिर गौरा का स्वर गूंज उठा : बाबा ! बाबा !!

'कौन ? तू आ गई ?'

'आ गई हूँ बाबा।'

'ले आई ?'

'ले आई हूँ।'

तुलसी का हाथ काँप उठा।

'यह है प्रसाद, परन्तु कफ़न नहीं मिला।'

'नहीं मिला !!'

'मेरे पति जी गये बाबा।'

'कहाँ हैं गौरा ?'

'वह रहे सामने।' गौरा ने राम की ओर उंगली उठा दी।

तुलसी हार गया था। गौरा हँसी। कहा : बाबा ! मेरे पति वहीं गये हैं। राम ही तो थे वे ! तुम मेरे गुरु हो बाबा ! मुझे चरन छूने दो।

उसने तुलसी के चरण छुए।

'उठ,' कवि ने कहा—'तू सौभाग्यवती हुई।'

'मुझे तुमने बचा लिया बाबा ! तुमने मुझे भगवान बता दिये। मैं पागल हो गई थी।'

तुलसी ने कहा : 'और अब मैं पागल हो गया हूं गौरा ?'

'क्यों बाबा ?'

'देखती है ? भगवान बोल नहीं रहे हैं।'

'बोल तो रहे हैं वे।'

'तुझे कुछ सुनाई दे रहा है ?'

'हां बाबा।'

'क्या कहते हैं बोल !'

'वे कहते हैं तुलसीदास विनय सीख ! विश्वास कर।'

तुलसी ने मन ही मन गौरा को प्रणाम किया, जैसे विदेह ने मैथिली को सिर झुकाया हो, और तुलसी ने विह्वल स्वर से पुकारा : मारुत ! मुझे बल दो। भक्त की रक्षा करो। मैं नहीं हटूँगा, मैं नहीं हटूँगा। मुझे वचन दो। यह संसार सदा ही पाप से मलिन नहीं रहेगा। इस लोक का उद्धार करो प्रभु ! तुम जगत नियंता हो। म्लेच्छों से पद दलित मानवता को फिर से उबारो स्वामी !

तुलसी ने करुण स्वर से गाया :

> अति आरत, अति स्वारथी, अति दीन दुखारी,
> इनकौ बिलगु न मानिए बोलहिं न बिचारी।
> लोक रीति देखी सुनी, व्याकुल नर नारी
> अहि बरषे अनबरषे हूँ देहिं दैवहिं गारी
> ना कहि आयो नाथ सों सांसति भय भारी
> "कहि आयो, कीबी छमा निज ओर निहारी।
> समय सांकरे सुमिरिए समरथ हितकारी
> सो सब विधि ऊपर करै अपराध बिसारी।
> बिगरी सेवक की सदा साहबहिं सुधारी,
> तुलसी पर तेरी कृपा निरुपाधि निरारी !"

गौरा चली गई थी और काशी में घूम घूम कर कह रही थी : बाबा ने मेरे पति को जिला दिया, वे मरे नहीं हैं, मरे नहीं हैं.......

उधर तुलसी राम के चरणों पर पड़ा रो रहा था।

और कवि का व्याकुल मन राजाराम के दर्बार में अपनी अर्जी पहुँचाने के लिये व्याकुल हो उठा। उसने समस्त देवी देवताओं की प्रार्थना की, जो वेद

की रक्षा में निरत थे। ध्वनि हृदय से उठने लगी। दर्बार में वैभव था। तुलसी एक अकिंचन! क्या वह रामराय तक नहीं पहुँचेगा? वह तो राम का दास था। व्यक्ति का दैन्य, संन्यासी की आत्मविरक्ति लिये हुए था, परन्तु लोकपक्ष में वह वर्णाश्रम धर्म की पुनः स्थापना के लिये कलि से घोर युद्ध था।

कवि ने प्रजा को विश्वास से सुनाया :

जो तेहि पंथ चलै मन लाई
तौ हरि काहे न होहिं सहाई॥
जो मारग स्रुति साधु बतावै
तेहि पथ चलत सबै सुख पावै॥
पावै सदा सुख हरि कृपा,
संसार आसा तजि रहै,
सुपनेहुं नहीं दुख देस दरसन,
बात कोटिक को कहै?
द्विज देव गुरु हरि संत बिनु
संसार पार न पावई,
यह जानि तुलसीदास त्रास हरन
रमापति गावई॥

लगा आचार्य शेष सनातन और नरहरि गुरु की आत्माएं प्रसन्न हो उठीं।

वही राम चाहिये था, जो दीनों की रक्षा कर सके। वही समाज चाहिये था जहाँ ब्राह्मण पूज्य हों पर जहाँ वे लोलुप न हों, जो रूढ़ि में अपना अहंकार लिये न बैठे रहें, वरन् वेद ब्राह्मण और पुराणों आदि की रक्षा के लिये निम्नवर्णों को सहूलियतें दें, और निम्नवर्ण वेद और ब्राह्मण को पूज्य मानकर वर्णाश्रम को सिर झुका दें। वह समाज चाहिये था जहाँ वेद को पूज्य मानने वाले संप्रदाय परस्पर लड़ें नहीं।

आदर्श राजा तो राम थे। मुगल या म्लेच्छों का वैभव ही क्या था! भगवान के लिये सब वर्ण समान थे, सबकी मुक्ति हो सकती थी, परन्तु समाज में अपना वर्णधर्म पालना ही श्रेष्ठ था।

और तुलसी का क्या था! वह अवधूत था। मस्त था। वह तो वर्णाश्रम

से परे संन्यासी था। उसे तो राम नाम ने खर से गयंद पर चढ़ा दिया था। और वह कलि कितना अत्याचारी था।

कवि ने गाया :

दीन दयालु दुरित दारिद दुख
दुनी दुसह तिहुँ ताप तई है।
देवकुमार पुकारत आरत
सबकी सब सुख हानि भई है।

तुम कहाँ इन म्लेच्छ और टुकड़खोर स्वार्थी सामंतों के पास अर्जी लेकर जाते हो? देखो अपने अतीत की ओर! वह गौरव और वह वैभव देखो! चलो राम के दरबार में अर्ज़ी दें।

प्रभु ने ही तो कहा है कि ब्राह्मण ही पृथ्वी पर श्रेष्ठ है। प्रभु की पृथ्वी पर रहने वाली मूर्त्ति ब्राह्मण ही है—

प्रभु के वचन बेद बुध सम्मत
मम मूरति महिदेव× भई है।
तिन्ह की मति रिस, राग, मोह, मद,
लोग लालची लीलि लई है।

हाय! उन पृथ्वी के देवताओं की मति को रोष, राग, मोह, लालच ने ग्रस लिया है। और राजसमाज के अनाचार की तो पूछो ही नहीं—

राजसमाज कुसाज कोटि कटु
कल्पत कलुष कुचाल नई है
नीति प्रतीति प्रीति परमिति पति
हेतुबाद हठि हेरि हई है।

लोक ने वर्णाश्रम की मर्यादा छोड़ कर ही कष्ट उठाया है—

आस्रम-बरन धरम-बिरहित जग
लोक बेद मरजाद गई है,
प्रजा पतित पाखंड पापरत
अपने अपने रंग रई है।

× ब्राह्मण : पृथ्वी का देवता

कलि रूपी कसाई ने पृथ्वीरूपी गाय को विवश कर दिया है—

परमारथ स्वारथ साधन भए
अफल सकल, नहिं सिद्धि सई है,
कामधेनु-धरनी कलिगोमर-
बिबस बिकल, जामति न बई है,
कलि करनी बरनिए कहाँ लौं
करत फिरत बिनु टहल टई है,
तापर दाँत पीसि कर मींजत,
को जानै चित कहा ठई है !

कलि दाँत पीसता है। परन्तु राम की दया देखो। वे कृपा कर रहे हैं—

दीजै दादि देखि नातो बलि*
मही-मोद-मंगल रितई है,
भरे भाग अनुराग लोग कहैं
राम अवध चितवनि चितई है।
विनती सुनि सानंद हेरि हँस
करुना बारि भूमि भिजई है,
रामराज भयो काज सगुन सुभ,
राजाराम जगत बिजई है।

राजाराम जगत के विजेता हैं।

समरथ बड़ो सुजान सुसाहिब
सुकृत-सेन हारत जितई है
सुजन सुभाव सराहत सादर
अनायास साँसति बितई है।
उथपे थपन, उजार बसावन,
गई—बहोर बिरद सदई है,
तुलसी प्रभु आरत-आरतिहर
अभय बाँह केहि केहि न दई है !

* बलि से दान लेने के बल

और यह करुणा के गीत उठते ही रहे।

ब्राह्मण जागने लगे। रामनाम के कारण ही तुलसी का जयजयकार होने लगा।

शुद्ध संस्कृत के श्लोक छोड़ कर ब्राह्मण विनयपत्रिका की हिंदी संस्कृत की स्तुतियाँ गाने लगे—

जयति मर्कटा धीस मृगराज-बिक्रम
महादेव मुद मंगलालय कपाली।
मोह-मद कोह-कामादि-खल-संकुल—
घोर संसार-निसि-किरनमाली॥
जयति लसदंजनादितिजकपि-केसरी-
कस्यप-प्रभव-जगदार्तिहर्त्ता
लोक-लोकप-कोक-कोकनद-सोकहर-
हंस हनुमान कल्यान कर्त्ता॥

वह हनुमान साधारण नहीं है। वह तो वेद विरोधियों को मारता है। मंत्रतंत्र अभिचार करने वाले तथा साकिनी डाकिनी आदि को देखता है, दबाता है।

जयति पर-जंत्रमंत्रिभिचार-ग्रसन,
कारमनि-कूट-कृत्यादि हंता
साकिनी-डाकिनी-पूतना-प्रेत-बैताल-
भूत-प्रथम-जूथ जंता।
जयति बेदांतविद, बिबिध बिद्या-बिशद-
बेद बेदांग-बिद्, ब्रह्मवादी
ज्ञान-बैराग्य-बिज्ञान-भाजन बिभो!
बिमल गुन गगन सुक सारदादी!

और इस प्रकार राजा राम की दुंदभि बजने लगी। वर्णाश्रम की ओर लोग फिर झुकने लगे। पण्डितों ने कहा—तुलसी ने ब्राह्मण धर्म का उद्धार किया। उसने ठीक ही कहा था कि वेद वेदांग, पुराणों का सार निचोड़ कर मानस में रखा था, और विनय ने तो सब समस्याएं हल कर दीं।

पण्डित बैठते। कहते : लोक संस्कृत भूल गया था। तुलसी ने भाषा में ही इस सनातनधर्म और संस्कृति को निचोड़ कर भर दिया।

किंतु लोक कल्याण की कामना करने वाला तुलसी मन से दुखी था। व्यक्तिपक्ष का मालिन्य आज भी दीन बना हुआ था।

यह सब सत्य था, इसकी मर्यादा थी। परन्तु यह सकलसंसार शून्य ही था—

केसव कहि न जाइ का कहिए ?
देखत तव रचना बिचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिये।
सून्य भीति पर चित्र, रंग नहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे।
धोये मिटै न, मरै भीति दुख, पाइय यहि तनु हेरे॥
रविकर नीर बसै अति दारुन मकर रूप तेहि माँही,
बदनहीन सो ग्रसै चराचर पान करन जे जाहीं।
कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कर मानै।
तुलसीदास परिहरै तीन भ्रम सो आपन पहिचानै॥

आपुन पहँचानने के लिये ही तो यह सब हुआ था !

किसने दी यह प्रेरणा।

रत्ना की बात ने ! रत्ना !

यदि वह न होती तो !

स्वप्न टूट गया।

'नारायण !' महाकवि पुकार उठे।

नारायण भीतर आया।

'गुरुदेव !'

महाकवि ने कहा : 'पुत्र ! बैठ जा। मलूक को भी बुलाले।'

दोनों आकर बैठ गये।

तुलसीदास ने कहा : लिख तो वत्स ! आज आनंद का दिन है।

'गुरुदेव !' मलूक ने उच्छ्वास भरा।

'सुन लो', कवि मुस्कराये। कहा : 'स्वप्नपूर्ण हुआ।'

वे गाने लगे—

पवन-सुवन, रिपुदवन, भरत लाल,
लखन दीन की,
निज निज अवसर सुधि किए बलि जाऊँ,
दास आस पूजि है खास खीन की।
राजद्वार भली सब कहैं
साधु समीचीन की
सुकृत सुजस साहिब कृपा स्वारथ
परमारथ गति भए गति बिहीन की ॥
समय सँभारि सुधारिबी
तुलसी मलीन की
प्रीति रीति समुझाइबी नतपाल
कृपालुहिं परमित पराधीन की ॥

मलूक ने लिख कर ऊपर देखा। कवि प्रसन्न थे। उनके हाथ जुड़े हुए थे। आँखें बन्द थीं। वे तृप्त थे। वे कह उठे—'दस्ताक्षर करो प्रभु! कलि से लोक की रक्षा के लिये अर्जी दी है, दास की याचना पर दस्तखत करो।'

और हठात् वे पुकार उठे : नारायण!

'गुरुदेव!' नारायण का गला रुंध गया।

'राजाराम ने सही करदी नारायण! अब कलि का नाश अवश्य होगा। रामराज्य जागेगा। फिर धर्म स्थापना होगी।'

और वे विभोर होकर कहने लगे—दास की बात सुनली गई है। मारुति की बात सुन कर भरत और लक्ष्मण ने भी सहायता दे दी है नारायण! राम नाम ही कलि में सहायक है। सारी राम की सभा ने उचित मार्ग यही बताया है। अहा गरीब निवाज की कृपा तो देखो। उन्होंने मुझे हाथ से उठाया है। अरे अब मुझे किसका डर है। मेरी बाँह तो राजाराम ने गही है। वे हँसे हैं। कह उठे हैं—ठीक है, मैंने सुधी लेली है। अनाथ तुलसी सनाथ हो

गया। रघुनाथ ने हस्ताक्षर कर दिये हैं, राजाराम ने अर्जी पर प्रसन्न होकर सही करदी है*—

और महाकवि ने उन्मुक्त कण्ठ से गाया—

मारुति मन रुचि भरत की
　　लखि लखन कही है।
कलि कालहुं नाथ नाम सों प्रतीति
　　प्रीति एक किंकर की निबही है।
सकल सभा सुनि लै उठी
　　जानी रीति रही है।
कृपा गरीब निवाज की,
　　देखत गरीब को साहिब बाँह गही है।
बिहँसि राम कह्यो सत्य है
　　सुधि मैं हूँ लही है।
मुदित माथ नावत बनी तुलसी अनाथ की,
　　परी रघुनाथ सही है।

और रघुनाथ ने सही करदी। महाकवि ने अंतिमबार देखा, मुस्कराये, और फिर धीरे से आँखें मींच लीं।

नारायण और मलूक जब रोते हुए द्वार पर दिखाई दिये तब अधीर हृदय से आकुल होकर बाहर हजारों नर नारी हाहाकार कर उठे।

काशिराज उपस्थित थे। काशी के उच्चकुलीन व्यक्तियों की आँखों में पानी भर आया था।

पुजारी इस देश से स्वयं तो चला गया था, किंतु अतीत के गौरव के प्रतीक, रामराज्य के स्वप्न को छोड़ गया था।

* यह अर्जी के पद का अर्थ नहीं है, उसका पहला अस्पष्ट चिंतन है।